भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन दृष्टि की मासिक संकलन पत्रिका

युक्रांद

(पिछले वर्ष के प्रकाशन पर एक दृष्टि)

प्रियवर,

भगवान श्री के अमृत आनन्द की दिव्य रश्मियां 'युक्रांद' पिछले तीन वर्षों से आपके जीवन में बिखेर रहा है। इस अंक के साथ युक्रांद अपने प्रकाशन के तीन वर्ष पूर्ण कर रहा है।

भगवान श्री के आशीष और आप सबकी स्नेह-वर्षा ने युक्रांद को स्थायित्व और गतिमान रहने की क्षमता दी है। सतत् आपके इस अनूठे सहयोग के हम दिव्य आकांक्षी रहेंगे। इसके साथ ही प्रस्तुत हैं प्रकाशन की आधार-शिलायें :

कुल प्राप्ति १४,७२७ रु. ७५ पै. [युक्रांद के १,१२६ वार्षिक सदस्यों से, विज्ञापन एवं दान आदि से।]

कुल व्यय १३,३१६ रु. ४५ पै. [११अंकों का व्यय (जन्म-दिवस विशेषांक सहित) मय ब्लाक ११,००० रु., पोस्टेज १,१०० रु., डिस्पेच-प्रवास एवं व्यवस्था १,२१६ रु. ४५ पै.।]

कुल लाभ १,४११ रु. ३० पै.

लाभ की इस राशि को युक्रांद के पिछले दो वर्षों की हानि की राशि की पूर्ति करने में उपयोग किया गया जो ६॥ हजार रु. थी।

इस प्रकार युक्रांद को चालू वर्ष में आपके सहयोग की प्रेमपूर्ण प्रतीक्षा है, कारण कि पिछली जो स्थायी निधि का शेष है उसी पर युक्रांद को अपने प्रकाशन के आधार रखना पड़ेंगे। अतः अपेक्षित है नये-नये सदस्यों से आर्थिक सहयोग, विज्ञापनदाताओं से विज्ञापन एवं दानदाताओं से दान।

शुभ कामनाओं सहित।

स्वामी धर्म सरस्वती	आलोक पांडे	कनु शेठ	अरविंद कुमार
व्यवस्थापक	'आकुल' राजेन्द्र	सौजन्य-	मानसेवी
	उप-सम्पादक	सम्पादक	सम्पादक

युक्रांद की आधार शिलायें

प्रियवर,

विशाल भारत के प्रांगण में भगवान श्री रजनीश की आनंद-रश्मियां युक्रांद के माध्यम से बिखरकर जो आनंद का आलोक व्याप्त कर रही हैं, वह तो युक्रांद के प्रेमी सुविज्ञ साधकों की अंतरात्मा से स्वयं उद्भूत है। (शेष कवर ३ पर)

भगवान श्री रजनीश की सृजनात्मक
जीवन दृष्टि की मासिक
संकलन पत्रिका

जून १९७२

युक्रांद

वर्ष – ३   अंक – २३ : २४

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द

जून
१६७२

मानसेवी--

सम्पादक :
अरविन्द कुमार

उप-सम्पादक :
आलोक पाण्डे
'आकुल' राजेन्द्र

सौज० सम्पादक :
कनु शेठ

व्यवस्थापक :
स्वामी धर्म सरस्वती

अनुक्रमणिका

पृष्ठ :

३. कण-कण अमृत — भगवान श्री के अमृत वचन

४. वासना-चक्र — भगवान श्री की बोध कथाओं से

५. क्या मनुष्य एक रोग है ? (एक प्रवचन) — संकलन : स्वामी योग चिन्मय

२६. Fragrance of Life — An interview with Swami Mangal Tirtha of Italy

३३ एक तरल, गैर-गंभीर व आनंदपूर्ण संन्यास का सूत्रपात (प्रश्नोत्तर प्रवचन) — संकलन : स्वामी योग चिन्मय

गीत-काव्य

२८. मुक्त स्वर — स्वामी अमृत परमहंस

६२. Solemn Surrender — Anand Bharti

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957

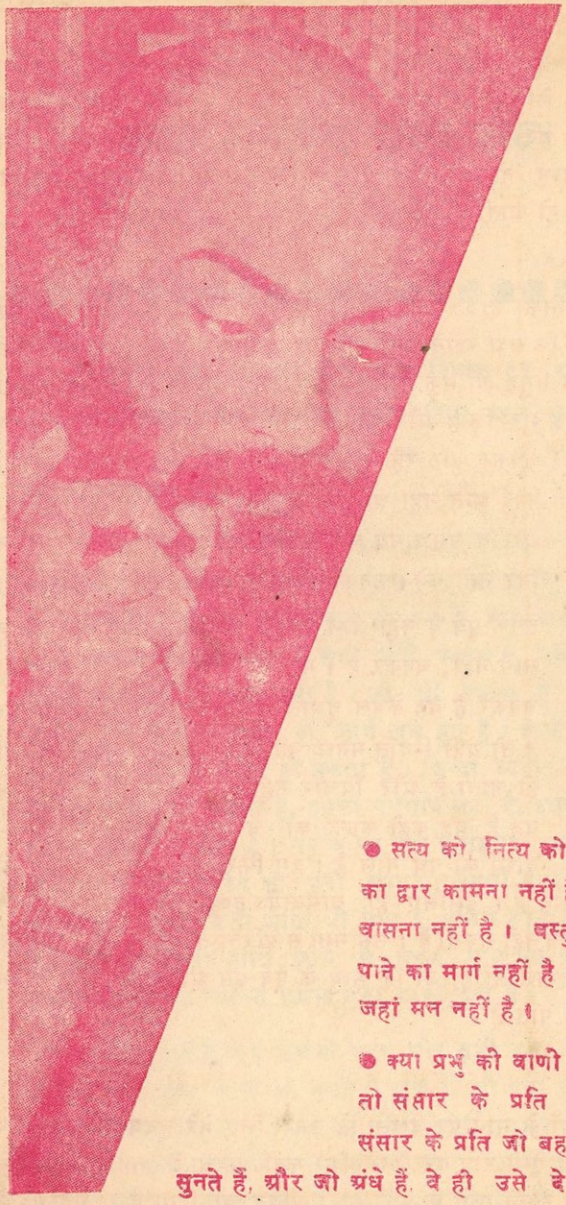

ओशो ओशो अमृत

● 'मैं' से मुक्ति चाहिए, 'मुझे' मुक्ति नहीं।

● सत्य को, नित्य को, शाश्वत को पाने का द्वार कामना नहीं है—तृष्णा नहीं है, वासना नहीं है। वस्तुतः मन ही उसे पाने का मार्ग नहीं है। वह तो वहीं है, जहां मन नहीं है।

● क्या प्रभु की वाणी सुनना चाहते हो? तो संसार के प्रति बहरे हो जाओ। संसार के प्रति जो बहरे हैं, वे ही उसे सुनते हैं, और जो अंधे हैं, वे ही उसे देखते हैं और जो लूले-लंगड़े हैं, वे ही उसमें गति करते हैं।

● हर आदमी को यह सौभाग्य मिला है कि वह अपने जैसा हो।

वासना-चक्र

जीवन या तो वासना के पीछे चलता है या विवेक के। वासना तृप्ति का आश्वासन देती है, लेकिन अतृप्ति में ले जाती है। इसलिए, उसके अनुसरण के लिए आंखों का बंद होना आवश्यक है। जो आँखें खोलकर चलता है, वह विवेक को उपलब्ध हो जाता है। और, विवेक की अग्नि में समस्त अतृप्ति वैसे ही वाष्पीभूत हो जाती है, जैसे सूर्य के उत्ताप में ओसकण।

●

एक प्राणी वैज्ञानिक डा० फेबरे ने किसी जाति विशेष के कीड़ों का उल्लेख किया जो कि सदा अपने नेता कीड़े का अनुगमन करते हैं। उसने एक बार इन कीड़ों के समूह को एक गोल थाली में रख दिया। उन्होंने चलना

शुरू किया और फिर वे चलते गये—एक ही वृत्त में वे चक्कर काट रहे थे। मार्ग गोल था और इसलिए उसका कोई अन्त नहीं था। किन्तु, उन्हें इसका पता नहीं था और वे उस समय तक चलते ही रहे, जब तक कि थककर गिर नहीं गये। उनकी मृत्यु ही केवल उन्हें रोक सकी। इसके पूर्व वे नहीं जान सके कि जिस मार्ग पर वे हैं, वह मार्ग नहीं, चक्कर है। मार्ग कहीं पहुंचाता है और जो चक्कर है वह केवल घुमाता है, पहुंचाता नहीं। मैं देखता हूं तो यही स्थिति मनुष्य की भी पाता हूं। वह भी चलता ही जाता है, और विचार नहीं करता कि जिस मार्ग पर वह है, वह कहीं कोल्हू का चक्कर ही तो नहीं? वासनाओं का पथ गोल है। हम फिर उन्हीं-उन्हीं वासनाओं पर वापिस आ जाते हैं। इसलिए ही वासनायें दुष्पूर हैं। उन पर चलकर कोई भी कहीं पहुंच नहीं सकता है। उस मार्ग से परितृप्ति असंभव है। लेकिन, बहुत कम ऐसे भाग्यशाली हैं, जो कि मृत्यु के पूर्व इस अज्ञानपूर्ण और व्यर्थ के भ्रमण से जाग पाते हैं।

●

मैं जिन्हें वासनाओं के मार्ग पर देखता हूं, उनके लिए मेरे हृदय में आंसू भर आते हैं, क्योंकि वे ऐसी राह पर हैं जो कि कहीं पहुंचाती नहीं। उसमें वे पायेंगे कि उन्होंने स्वप्न मृगों के पीछे सारा जीवन खो दिया है। मुहम्मद ने कहा है: "उस आदमी से बढ़कर रास्ते से भटका हुआ कौन है जो कि वासनाओं के पीछे चलता है।"

सं० : स्वामी योग चिन्मय

क्या मनुष्य एक रोग है ?

[रोटरी क्लब, जुहू, बम्बई में प्रातः दिनांक ११ अक्टूबर, १९७१ को भगवान श्री रजनीश द्वारा दिया गया एक प्रवचन।]

मेरे प्रिय आत्मन्,

क्या मनुष्य एक रोग है ? इज मैन ए डिसीज ? इस सम्बन्ध में सबसे पहली बात जो आपसे मैं कहना चाहूंगा—वह यह है कि मनुष्य अपने आप में तो रोग नहीं है, लेकिन मनुष्य जैसा हो गया है, वैसा जरूर रोग हो गया है। अपने आप में तो इस जगत में सभी चीजें स्वस्थ हैं, लेकिन जो भी स्वस्थ है, उसके रुग्ण होने की सम्भावना है। जो भी स्वस्थ है, बीमार हो सकता है, जीवित होने के साथ दोनों ही मार्ग खुले हुए हैं। सिर्फ मरा हुआ व्यक्ति ही बीमारी के भय के बाहर हो सकता है। जिन्दा व्यक्ति का अर्थ ही यही है, कि वह बीमार हो सकता है, इसकी पोसिबिलिटी है, इसकी संभावना है, और मनुष्य बीमार हो गया है। मनुष्य का पूरा इतिहास उसकी बीमारियों का इतिहास है, और मनुष्य की पूरी सभ्यता, उसकी बीमारियों को छिपाने का प्रयास है। मनुष्य किसी भांति जी लेता है, लेकिन जीने का नाम जिन्दगी नहीं है। और हम किसी भांति जन्म से लेकर मृत्यु तक की यात्रा कर लेते हैं, इसलिए अपने को जीवित समझ लेना काफी नहीं है।

मैंने सुना है, एक आदमी मरा, और तभी उसे पता चला, कि वह जीवित था। बहुत लोगों को मरने के क्षण में ही पता चलता है, कि जीवन हाथ से निकल गया है। जीवन का सीधा कोई अनुभव ही नहीं होता। जैसा मनुष्य है—रुग्ण, अस्वस्थ, तनाव से भरा हुआ, उसमें जीवन का अनुभव हो भी नहीं सकता। लुइस बिश ने एक किताब लिखी है, नाम उसका बहुत

प्यारा है, नाम है, "बी ग्लैड, दैट यू आर न्यूरोटिक", प्रसन्न हों कि आप मानसिक रूप से बीमार हैं। मजाक उसकी गहरी है, कहना वह यह चाह रहा है, कि इसलिए प्रसन्न हों, कि मानसिक रूप से बीमार होना बहुमत में होना है, मिजारिटी में होना है। अधिक लोग मानसिक रूप से बीमार हैं, और बिश का खयाल है, कि जैसे-जैसे आदमी आगे बढ़ रहा है, मानसिक बीमारी बढ़ रही है। और बहुत जल्द वह वक्त आ जायेगा जब मानसिक रूप से जो बीमार नहीं होगा, उसकी गिनती नार्मल में नहीं हो सकेगी। इसलिए वे लोग, जो मानसिक रूप से बीमार हैं, उन्हें प्रसन्न होना चाहिए, क्योंकि मनुष्य की भविष्यता के वे साथ हैं। मनुष्य का भविष्य पागलों और बीमारों का ही भविष्य है। शायद बहुत जल्दी वह वक्त आ जाय, कि हमें पागल लोगों के लिए पागलखाने न बनाने पड़ें, बल्कि जो लोग पागल होने से बच जायं, उनकी रक्षा के लिए हमें इन्तजाम करना पड़े, अलग-अलग उनके ठहरने की व्यवस्था करनी पड़े। जिसे हम सामान्य रूप से स्वस्थ आदमी कहते हैं, उसका केवल इतना ही मतलब होता है, कि जितने सब लोग बीमार हैं मानसिक रूप से, वह उतना ही बीमार है, उनसे ज्यादा नहीं। मानसिक रूप से विक्षिप्त और साधारण रूप से स्वस्थ आदमी में जो अन्तर है, वह अन्तर गुण का नहीं, केवल मात्रा का है, वह केवल डिग्रीज का ही अंतर है। जैसे निन्यानवे डिग्री पर पानी गरम होता है, लेकिन भाप नहीं बनता, सौ डिग्री पर भाप हो जाता है। लेकिन सौ डिग्री गरम पानी में, और निन्यानवे डिग्री गरम पानी में कोई गुण का भेद नहीं है, कोई क्वालिटेटिव फर्क नहीं है; जो फर्क है वह केवल डिग्रीज का है, एक डिग्री और, और पानी भाप बन जायगा। जिन्हें हम साधारण रूप से स्वस्थ लोग कहते हैं, उनमें और मानसिक रूप से बीमार आदमी में जो फर्क है, वह डिग्री का ही है, एक डिग्री गर्मी और, और कोई भी आदमी पागल हो सकता है।

विलियम जेम्स एक बड़ा वैज्ञानिक था। जिन्दगी भर उसने लोगों के मन के सम्बन्ध में विचार किया। मरने के कोई बीस वर्ष पहले वह एक पागलखाने को देखने गया, और पागलखाने से लौटकर एकदम उदास, परेशान हो गया। उसके मित्रों ने बहुत पूछा, कि इतनी उदासी की क्या बात है? तो विलियम जेम्स ने कहा कि मैं इसलिए उदास हो गया हूं, कि पागलखाने में पागलों को देखकर और अपने को देखकर, मुझे कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं मालूम होता। थोड़ा बहुत फर्क है, लेकिन निश्चित नहीं हो सकता हूं, अब कि वह फर्क किसी भी दिन समाप्त हो जाय। उसके मित्रों ने समझाया कि तुम पागल नहीं हो, तुम क्यों पागलपन में पड़ते हो? विलियम

जेम्स ने कहा कि जिन लोगों को मैं देखकर आया हूं, वे भी कल तक पागल नहीं थे। और आज पागल हो गए हैं। मैं आज तक पागल नहीं हूं, लेकिन कल पागल हो सकता हूं, क्योंकि जैसा मैं आदमी हूं, ठीक ऐसे ही आदमी वे लोग भी कल तक थे जो आज पागल हो गए हैं। जो उनके भीतर चल रहा था वह मेरे भीतर भी चल रहा है। जो फर्क है वह इतना ही है कि जो मेरे भीतर चल रहा है वह उनके बाहर भी आना शुरू हो गया है।

अगर आप आंख बन्द करके दस मिनिट के लिए अपने भीतर देखें, तो यह सवाल बहुत अजीब नहीं मालूम पड़ेगा, कि क्या आदमी एक बीमारी है? अगर दस मिनिट कोई मौन होकर अपने भीतर झांके, तो उसे पता चलेगा, कि जिन-जिन बातों के लिए वह किसी को भी पागल कहेगा, वह उसके भीतर मौजूद हैं, और चल रही हैं। अगर आप द्वार बन्द कर लें, और एक कागज पर आपके मन में जो चलता हो उसे लिख डालें ईमानदारी से, हालांकि हम दूसरों के साथ चाहे ईमानदार हो जाते हों, अपने साथ ईमानदार होने वाले लोग बहुत कम हैं। ईमानदारी से लिख डालें, जो आपके भीतर चलता हो, अपने निकटतम मित्र को भी वह कागज आप बताना पसन्द न करेंगे। क्योंकि आपको खुद ही हैरानी होगी कि यह सब मेरे भीतर चलता है! तो फिर मुझमें और पागलों में अन्तर क्या है? मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कि शायद ही ऐसा आदमी खोजने से मिले, जिसने जिन्दगी में दो चार बार आत्म-हत्या करने का विचार न किया हो। शायद ही ऐसा आदमी खोजने से मिले जिसने कभी किसी क्षण में किसी दूसरे की हत्या का विचार न किया हो। शायद ही ऐसा आदमी खोजने से मिले, कि जिन बातों को हम पागलपन कहते हैं, अपराध कहते हैं, पाप कहते हैं, इन सारी बातों को किसी न किसी क्षण में उसने अपने मन में न कर लिया हो। यह बात दूसरी है कि वह बाहर तक उन बातों को ला पाने की हिम्मत न जुटा पाया हो, लेकिन इससे कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं पड़ता है। कामू ने अपने एक बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ की शुरुआत इस बात से की है, कि जहां तक मैं समझता हूं, कामू ने कहा है, आदमी की जिन्दगी में सबसे बड़ा सवाल आत्म-हत्या है, स्युसाइड है। और कामू का खयाल है, कि जो लोग भी बुद्धिमान हैं, उनकी जिन्दगी में आत्म-हत्या का विचार आता है। जिस आदमी को हम मानसिक रूप से रुग्ण और बीमार कहते है, उस आदमी और हममें कोई बहुत बुनियादी फर्क नहीं है। हालांकि, हमें डर लगेगा यह बात सोचने में, क्योंकि यह बात सोचना भी बहुत भयकारी है कि हमारे बीच और पागल के बीच कोई फर्क नहीं है। दूसरे महायुद्ध में जितने लोग युद्ध में मरे, उससे ज्यादा लोग सड़कों पर कारों से एक्सीडेन्ट

में मरे हैं। और जब मनोवैज्ञानिक कहते हैं, कि कार एक्सिडेंट में मरने वाले ६० से अस्सी प्रतिशत लोग बेकार ही मर जाते हैं। वे चलाने वाले के पागलपन की वजह से मर जाते हैं। हिटलर और सारी दुनिया के फासिस्ट मिलकर जितने लोगों को मार सके हैं, उतने लोगों को साधारण लोग अपनी विक्षिप्तता को एक्सिलेटर पर दबा कर मार डालते हैं। आपको भी खयाल होगा, अगर आप क्रोध में हैं, तो एक्सिलेटर जोर में दबने लगता है, साइकिल का पैडिल जोर से चलने लगता है। आपके भीतर के रोग किन्हीं न किन्हीं रास्तों से बाहर निकलना शुरू कर देते हैं। ६० से लेकर ८० प्रतिशत अगर सड़क पर मरने वाले लोग हमारे पागलपन के शिकार हैं, तो जिन लोगों को हमने पागलखानों में बन्द किया है, उनके साथ शायद हम ज्यादती कर रहे हैं, और अन्याय कर रहे हैं।

यह जो आदमी है हमारा, इस आदमी की तरफ अगर गौर से देखें तो न तो इस आदमी की जिन्दगी में कोई खुशी है, न कोई आनन्द है। न कोई नृत्य है, न कोई गीत है। इस आदमी की जिन्दगी एक उदास मरुस्थल है, जिसमें फूल कभी खिलते हुए मालूम नहीं पड़ते। हां, फिर फूल के सपने चलते हैं, भविष्य में मालूम होते हैं फूल खिलते हुए। आज की उदासी को हम कल के फूलों के लिए झेल लेते हैं, और आज की मुसीबत को हम भविष्य की सुख और सुविधा के लिए बरदाश्त कर लेते हैं, लेकिन वह भविष्य कभी आता हुआ मालूम नहीं पड़ता, कभी आता नहीं दिखायी पड़ता। क्योंकि जिनकी जिन्दगी में वर्तमान में फूल नहीं खिलते, उनकी जिन्दगी में कभी भी फूल नहीं खिल सकते। हां, लेकिन एक सुविधा हो जाती है, हम कल की आशा में आज को जी लेते हैं। आज के आंसू हम झेल लेते हैं, कल की मुस्कुराहट की आशा में। नहीं, आप कहेंगे, हम आज भी मुस्कराते हैं। लोग सब जगह मुस्कराते हुए दिखायी पड़ते हैं, लेकिन जितना ही लोगों की मुस्कुराहट में गहरा झांका जाय, उतनी ही हैरानी होती है। मुस्कुराहटें ऊपर से चिपकाई हुई, और झूठी हैं। नीत्से निरंतर हंसता रहता था, और किसी ने नीत्से से पूछा, कि तुम इतने खुश हो, तुम्हें कौन-सा खुशी का खजाना मिल गया है ? नीत्से ने कहा, यह मत पूछो, क्योंकि जैसा मैं अपने को जानता हूं, उसमें हंसने का कारण खुशी नहीं हैं। उसमें हंसते रहने का कारण कुल इतना है, कि अगर मैं न हंसूं, तो सिवाय रोने के मेरे पास कुछ बचेगा नहीं। मैं हंसता रहता हूं, ताकि रोने को छिपा सकूं। मैं हंसता रहता हूं, कि कहीं रोने न लगूं। अगर आप भी अपने से पूछेंगे, कि आपकी हंसी कहीं रोने को छिपाने का उपाय तो नहीं है ? और जब आप रास्ते पर किसी से कहते हैं, कि बहुत ठीक हूं, और उस बहुत

ठीक के पीछे आयी हुई मुस्कुराहट सिर्फ आपको छिपाती है, या उभारती है, या प्रगट करती है।

अभी में पढ़ रहा था, एक मनोवैज्ञानिक ने पागल की परिभाषा में एक बहुत अजीब बात कही है, उसने कहा है, पागल मैं उस आदमी को कहता हूं, कि जो अगर दुखी होता है, तो कह देता है मैं दुखी हूं, परेशान होता है तो कह देता है मैं परेशान हूं, और रोता होता है तो रो देता है। तब तो मैं बहुत हैरान हुआ। अगर पागल आदमी की यह परिभाषा है, कि अगर वह दुखी हो तो कह दे कि मैं दुखी हूं, और रोता हो तो रोने लगे। तो फिर जिसको हम स्वस्थ आदमी कहते हैं वह क्या एक धोखा है? एक डिसेप्शन है? ऐसा मालूम पड़ता है, कि जिसे हम स्वस्थ आदमी कह रहे हैं, वह एक धोखा है। खेत में आपने धोखे के आदमी खड़े हुए देखे हैं, गांव के किसान हण्डी को लटका कर कुर्ता लटका देते हैं, लकड़ियों में। आदमी—कामचलाऊ आदमी पैदा हो जाता है, पक्षियों को डराने के लिए काफी होता है, खुद के लिए काफी नहीं होता, खुद के लिए होता ही नहीं, सिर्फ दूसरों के लिए होता है। शायद आपने भी खेत में खड़े हुए झूठे आदमी को देखा होगा। उसकी जिन्दगी दूसरों के लिए है, खुद के लिए उसकी कोई जिन्दगी नहीं है। और अगर हम बहुत गौर से अपनी तरफ देखें, तो हममें से शायद ही कोई ऐसा आदमी होगा, जिसने अपने लिए जिन्दा रहना शुरू कर दिया हो। आमतौर से हम भी दूसरे के लिए जीते हैं। किसी दूसरे के लिए हंसते हैं, और किसी दूसरे के लिए मुस्कराते हैं, और किसी दूसरे के लिए खुश मालूम होते हैं, और किसी दूसरे के लिए रोते हुए मालूम होते हैं, और धीरे-धीरे जिन्दगी दूसरे के लिए जी जाकर समाप्त हो जाती है, लेकिन जो जिन्दगी सिर्फ दूसरों को दिखाने के लिए जी गई हो, वह एक अभिनय हो सकती है, वह एक एक्टिंग हो सकती है, एक जिन्दगी नहीं हो सकती। और जो जिन्दगी अभिनय हो, सत्तर वर्ष का लम्बा अभिनय वह अगर विक्षिप्त और पागल और डिसीज्ड हो जाय, तो आश्चर्य नहीं है।

हम इतने डर भी गये हैं, अपनी जिन्दगी जीने से और अपने को पहचानने से कि जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। हम सब डरे हुए लोग हैं। और हमारा धर्म, और हमारा समाज, और हमारी नीति, और हमारा शिष्टाचार, हम सब भयभीत लोगों के इन्तजाम हैं, भय को कम करने के लिये। जैसे कि कोई आदमी अकेला अन्धेरी गली में जाता है तो वह सीटी बजाने लगता है। हालांकि उसकी सीटी बजाने से कोई फर्क नहीं पड़ता। अन्धेरा कम नहीं होता, और न उस अंधियारे में कोई भय की कमी होती है।

लेकिन खुद सीटी बजाकर आत्मविश्वास बढ़ता हुआ मालूम होता है। आदमी अकेले में सीटी बजाकर अपने को ही धोखा दे देता है। हम इस जिन्दगी के रास्ते पर न मालूम कितने-कितने ढंगों से अपने को धोखा दे रहे हैं। इस धोखे को मैं बीमारी कहता हूं, और जब तक आदमी इस तरह के सेल्फ डिसेप्शन में और आत्मवंचना में जियेगा, तब तक आदमी स्वस्थ नहीं हो सकता है। और इस आत्मवंचना का कुल परिणाम इतना होता है, कि हमारी कोई समस्या समाप्त नहीं होती, बल्कि हमारी समस्या के लिए खोजा गया हर समाधान दस नई समस्याओं को पैदा कर जाता है। जहां सारे लोग धोखे में जी रहे हों वहां अगर धोखे का एक जाल फैल जाय, और उस धोखे के जाल में हर आदमी बुरी तरह फंस जाय, कि उससे निकलना मुश्किल हो जाय, या निकलने की कोशिश करे, तो उसे नये जाल बनाने पड़ें, और उनमें फंसता जाय, और फिर एक दुष्चक्र, व्हिसियस सर्किल पूरी जिन्दगी को लेकर डूब जाता है, और आदमी जैसे था, या नहीं था, बराबर मालूम होता है।

इस विक्षिप्त स्थिति के लिये कौन जिम्मेवार है? और इस विक्षिप्त स्थिति के पैदा होने के कारण क्या हैं? हमारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है, और कारण भी हमने पैदा किये हैं, और बचपन से हम हर बच्चे के दिमाग में वे सब कारणों के बीज बो देते हैं, जो उन्हें पागल कर देंगे। जिस ढंग से हमें, हमारी पुरानी पीढ़ियां पागल कर गई हैं, हम अपनी नई पीढ़ियों को पागल करते चले जा रहे हैं, उसी ढंग से अगर पुरानी पीढ़ी से नई पीढ़ी को वसीयत में सबसे बड़ी कोई चीज मिलती है, तो वह सदा से चला आया हुआ पागलपन मिलता है। न मालूम कितने झूठ हैं, जिनको हमने सच बना रखा है, और न मालूम कितने सच हैं, जिनको हमने झूठ बना रखा है। जहां दरवाजे नहीं हैं, वहां हम दरवाजे समझते हैं, और जहां दीवालें हैं, वहां हम दरवाजे बताते हैं। हमने सारी जिन्दगी के आधार बचपन से इतने बड़े झूठों पर रखे हैं, कि एक दिन फिर सच के दर्शन होने बन्द हो जाते हैं, और अगर बचपन से ही अन्धेरे को प्रकाश समझाया जाता हो, और प्रकाश को देखने में भय बताया जाता हो, तो बहुत आश्चर्य नहीं है, कि आंखें बन्द हो जायं!

मैंने सुना है कि एक टैक्सी ड्राइवर शायद नया-नया ही टैक्सी चलाने निकला होगा। उसकी चाल-ढाल को, उसके ढंग को, उसकी भाग-दौड़ को देखकर उसमें बैठे यात्री ने उस ड्राइवर से कहा कि कम से कम मोड़ पर तो थोड़ा सम्हलकर चलाओ। उस टैक्सी ड्राइवर ने कहा, घबड़ाएं मत, जो तरकीब मैं अख्तियार करता हूं, वही आप भी करेंगे। उस यात्री ने पूछा, वह क्या तरकीब है? उसने कहा, जब मोड़ आता है, तो मैं आंख बन्द कर लेता

हूं। न उपद्रव दिखाई पड़ेगा, न कोई डर रहेगा। जो तरकीब मैं काम में ला रहा हूं, वह आप भी काम में लायें, और जब आप घबड़ाने लगें तो आंख बन्द कर लें।

यह हमें हंसने की बात मालूम पड़ती है, लेकिन मनुष्य की पूरी जाति इसी तरकीब को काम में ला रही है। जहां-जहां जिंदगी के खतरे हैं, वहां-वहां आंख बन्द कर लेना हमारी तरकीब है, इन्तजाम है। और हर बच्चे को हम इस तरह की व्यवस्था देते हैं, कि उसके पास आंख भी रहें, और वह अन्धा भी हो जाय। आंखें कामचलाऊ रह जाती हैं, अन्धापन बहुत गहरा हो जाता है। फिर पागल होना बिल्कुल स्वाभाविक हो जाता है। ऐसे कुछ थोड़े से सूत्रों की मैं आपसे बात करूं, जिनने आदमी को एक डिसीज बना दिया है।

पहली बात तो यह है, न मालूम किस दुर्भाग्य के क्षण में आदमी के ऊपर दुखवादियों का प्रभाव भारी रूप से पड़ गया है। न मालूम किस क्षण में जिन्दगी में सुख लेना पाप मालूम होने लगा। हर बच्चे को हम, सुख न ले पाये, इसका पूरा इन्तजाम करते हैं, और इस तरह की स्थिति पैदा कर देते हैं, कि सुख लेते वक्त उसको गिल्ट, अपराध मालूम पड़ने लगे। अभी इजरायल में एक छोटा-सा प्रयोग वे करते हैं बच्चों के ऊपर, और उस प्रयोग से उनने जो निष्कर्ष निकाले हैं, उसमें एक निष्कर्ष जरूर सोचने जैसा है। उसमें उनका कहना यह है, कि जब तक हम मां-बाप को बच्चों से न छुड़ा सकें, तब तक हम दुनिया को खुशी से नहीं भर सकते। बहुत अजीब बात है। जब तक मां-बाप से बच्चों को न छुड़ा सकें, तब तक दुनिया को खुशी से न भर सकें, तब तो फिर एक बार सोचना पड़ेगा, कि मां-बाप और बच्चों के बीच जो लेन-देन चल रहा है, वह कहां तक स्वस्थ है ? मुझे भी लगता है, कि उनके कहने में दूर तक सचाई है। उसके कारण भी हैं। जैसे-जैसे उम्र ढलती जाती है, वैसे-वैसे आदमी उदास होता जाय, यह स्वाभाविक है। और अब तक पूरी मनुष्यता के बच्चे बूढ़ों के हाथ पाले गये हैं, और बूढ़े अपनी उदासी बच्चों के ऊपर थोप जायं, इसमें बहुत हैरानी नहीं है। यह अजीब-सी बात है, कि नये बच्चे बूढ़ों के हाथ में पड़ते रहें ! बूढ़ों की जिन्दगी जा चुकी है, शायद कभी आयी ही न हो उनके हाथों में, लेकिन एक बात तय है, कि अब उनके हाथों में जिन्दगी नहीं है, सूरज उनका ढलता है, रात होने के करीब है, मौत करीब आने लगी है, और मौत की काली छायाएं उनके मन पर प्रभाव करने लगी हैं। इन बूढों के हाथ में बच्चों को पालने का मौका आता है। स्वभावतः, इनके बीच पचास साल, चालीस साल, साठ साल का भी अन्तर हो सकता है। इतने बड़े अन्तर पर आने वाले बच्चों को ठीक वैसी ही हालत मिलती है, जैसे

कुम्हलाते हुए फूलों को नयी कलियों को शिक्षा देने का मौका मिल जाय। मरते हुए पौधे, अंकुरित होते हुए पौधों के लिए संदेश दे जायं। डूबता हुआ सूरज, ऊगने वाले सूरज के लिए पत्र छोड़ जाय। जो खतरा होगा, वही खतरा मनुष्य जाति के साथ हो गया है। डूबता हुआ आदमी, ऊगते हुए आदमियों के लिए अपने संदेश दे जाता है, बूढ़े, बच्चों के लिए उदासी की खबरें छोड़ जाते हैं। मनुष्य जाति के सारे धर्म ग्रन्थ बूढ़ों के द्वारा निर्मित हुए हैं, और मनुष्य जाति की सारी शिक्षाएं वृद्धों ने तय की थीं। मनुष्य जाति का सारा का सारा विचार तन्तु का जो जाल है, वह डूबते हुए लोगों के द्वारा अस्तित्व में आया है, और आते हुए बच्चों के ऊपर थोप दिया जाता है। बच्चे नाचना चाहेंगे, लेकिन बूढ़े अब नहीं नाचना चाहेंगे, और तब बूढ़ों की आंखें बच्चों के नाच को अपराध बना दें, तो बहुत हैरानी नहीं है। बच्चे आनंदित होना चाहेंगे, लेकिन बूढ़ों के लिए आनंदित होना मजाक मालूम होने लगेगा। बच्चे प्रसन्न होना चाहेंगे, लेकिन बूढ़ों के लिए प्रसन्नता दुखद होती चली जायगी, और तब, अगर सारे बूढ़े मिलकर जिनके हाथ में समाज है, रहा है, वे अगर बच्चों की खुशियां छीन लें, या बच्चों के मन में ऐसा भाव डाल दें कि वे कोई अपराध कर रहे हैं, कोई पाप कर रहे हैं, कुछ बुरा कर रहे हैं, तो इसमें हैरानी नहीं है, इसलिए हर पीढ़ी आने वाले पीढ़ी के मन में उदासी के बीज छोड़ जाती है। हर आने वाली पीढ़ी, जन्म के साथ, मृत्यु के बीज छोड़ जाती है। हर पुरानी पीढ़ी, खुशी में जहर डाल जाती है, और खुशी को अपराध कर जाती है। स्वभावतः इससे परिणाम खतरनाक होने वाले हैं। इसका एक खतरनाक परिणाम तो यह हुआ, कि अगर मैं आनन्द भोगने में असमर्थ हो जाऊं, तो सिवाय दुख भोगने के और कोई उपाय नहीं रह जायगा, और दुख भोगने के लिए मन कभी राजी नहीं होता। स्वभावतः दुख भोगने के लिये आदमी बना ही नहीं है। दुख भोगने के लिये हमारे मन में गहरा विरोध है। सुख भोगने के सम्बन्ध में अपराधी हो जायेंगे, दुख भोगने का विरोध है, फिर यह आदमी एक तनाव में, एक इनर टेंशन में उलझ जायेगा, जिसमें सुलझना मुश्किल है। और जो आदमी एक बार ऐसा समझ ले, कहीं की भ्रांति से उसके मन में यह बात प्रवेश कर जाय, कि सुख अपराध है, वह आदमी दूसरों का सुख भी बरदाश्त नहीं कर सकेगा। इसलिए सब साधु सन्तों ने मिलकर, जिन लोगों को भी आनन्द की जरा-सी भी चाह है, उन्हें नर्क में डाला हुआ है। जिनके जीवन में सुख की जरा-सी भी आकांक्षा है, उनको पापी घोषित कर दिया है। धर्मों ने एक अजीब बात की घोषणा कर रखी है, कि जो आदमी दुख झेलने को तैयार है, वही आदमी धार्मिक है, और जो आदमी अपने हाथ से अपने को दुखी करने में बहुत तैयारी दिखलाता है,

वह आदमी बहुत महान है, और जो अपने हाथ से दुख पैदा कर लेता है, अपने चारों तरफ, वह महात्यागी है, वह आदरणीय है। जब हम दुख की इस भांति पूजा करेंगे, तो पृथ्वी विक्षिप्त नहीं होगी, तो क्या होगी ? हमने अब तक दुख ही पूजा है। हमारी यह दुख की पूजा बहुत लम्बी हो गई है, सनातन हो गई है। इस पृथ्वी पर दुख के देवता के अतिरिक्त, हमने किसी और देवता को खड़ा नहीं किया है, इसलिये हम सोच भी नहीं सकते, कि साधु-सन्त हंसते हुए हों, मुस्कुराते हुए हों, आनन्दित हों। हम सोच भी नहीं सकते, कि साधु सन्त नाचते हुए हों, हम सोच भी नहीं सकते, कि साधु-संतों के हाथ में खिलते हुए फूल हों। हम साधु-सन्तों के आस-पास मौत और मरघट को देखने के आदी हो गये हैं।

निश्चित ही, जो लोग सबसे ज्यादा रुग्ण हैं, वे ही लोग इस तरह के दुखवादी संसार में आदृत हो सकते हैं। हमने बीमारों को पूजा है, और हमने स्वस्थ लोगों की निन्दा की है, हमने सब तरह के स्वस्थ लोगों की भारी निन्दा की है। अगर एक आदमी खाना खाने में आनन्द ले रहा है, तो निन्दित हो गया। और हमने अपने सिद्धांत बनाये हैं, कि सिद्धान्त है--अस्वाद। अगर गांधी जी के ग्यारह सिद्धान्तों को उठाकर देखें, तो वह किसी भी आदमी को या तो पागल, या पाखण्डी बना देने के लिए काफी हैं। अस्वाद—भोजन करना, लेकिन स्वाद मत लेना। अब यह किसी भी आदमी को पागल कर देने के लिए पर्याप्त है, या पाखण्डी कर देगा। या तो मैडनेस आयेगी, या हिप क्रेसी आयेगी, और हिपोक्रेसी मैडनेस से भी बुरी मैडनेस है। उससे तो बेहतर है, आदमी पागल हो जाय, कि कम से कम पागल आदमी आनेस्ट तो होता है, ईमानदार तो होता है, धोखेबाज तो नहीं होता ! क्या अजीब बात है, मुंह और जीभ बनायी इसलिए गयी है, कि आप स्वाद ले सकें। और जिस आदमी की जीभ काट दी जायगी, उसकी आत्मा का एक हिस्सा कट जायेगा, क्योंकि जो आदमी स्वाद नहीं ले सकता, उस आदमी की जिन्दगी में स्वाद से जो अनुभव आते हैं, वह उनसे वंचित रह जायगा, उसकी उतनी समृद्धि कम हो जायगी। आप ऐसा सोचें कि एक आदमी की जीभ भी काट दें, हाथ भी काट दें, कान भी काट दें, क्योंकि सभी इन्द्रियां अपने-अपने स्वाद लेती हैं—आंख रंग को देखना चाहती है, रूप को देखना चाहती है। आंख सौंदर्य का स्वाद लेना चाहती है, चाहे वह फूल का हो, चाहे वह आदमी की शक्ल का हो, चाहे स्त्री की शक्ल का हो, चाहे चित्र में हो। कान गीत सुनना चाहते हैं, संगीत सुनना चाहते हैं। ये सब स्वाद हैं। आंख का स्वाद है, कान का स्वाद है, हाथ भी स्वाद लेना चाहते हैं, पूरा जीवन स्वाद लेना चाहता

है। इस स्वाद को सब तरफ से काट दें, तो आदमी में और अमीबा में क्या फर्क रह जायगा ? आदमी और अमीबा में कोई फर्क नहीं रह जायगा। आदमी और पशुओं में जो अन्तर है, उसकी इन्द्रियों की सेंस्टीविटी के विकास का अन्तर है। आदमी की इंद्रियां जितनी संवेदनशील हैं, उतनी उसकी आत्मा गहरी और समृद्ध होती चली जाती है। ऐसा नहीं है, कि बुद्ध की आंखें कम देखती हैं, बुद्ध की आंखें हमसे ज्यादा देखती हैं। ऐसा नहीं है कि बुद्ध की आंखों ने सौंदर्य देखना बन्द कर दिया है, सचाई यह है कि बुद्ध की आंखों ने सौंदर्य को इतने गहरे देखा है, कि अब कुरूपता में भी उन्हें सौंदर्य दिखाई पड़ने लगा, यह बहुत दूसरी बात है।

सूरदास ने आंखें फोड़ ली हैं, कि कहीं आंखें भटका न दें, लेकिन जो आत्मा इतनी कमजोर होगी, आंखों को देखने से इसके भटकने का डर मालूम पड़ता हो, क्या आंखें फोड़ने से वह आत्मा बहुत मजबूत हो जायगी ? आंखें रहते हुए जो भटक सकता है, आंखें खो जाने पर वह बच जायेगा भटकने से? आँखों वाले भटक जायेंगे तो अन्धों का क्या होगा ? नहीं, आंखें फोड़ लेने से कोई भटकने से नहीं बच सकता। आंखें फोड़ना सिर्फ इस बात की खबर है, कि आदमी की आत्मा बहुत कमजोर है। हां, आंखों से बचकर कोई रूप से बच सकता है। आंखें बन्द कर लें, तो रूप आंखों के भीतर पैदा होना शुरू हो जायेगा, और आंखें बन्द करके जैसा रूप दिखाई पड़ता है, वैसा रूप खुली आंखों से कभी नहीं दिखाई पड़ता।

बन्द आंखों से कोई भाग नहीं सकता, न कान फोड़कर कोई संगीत से मुक्त हो सकता है। हां, एक बात पक्की हो सकती है, कि इन द्वारों को बन्द करके, उसकी आत्मा दीन और दरिद्र हो सकती है। स्वाद इतनी पूर्णता से लिया जा सकता है, कि परमात्मा को धन्यवाद उससे पैदा हो। और मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जो इतना पूर्ण स्वाद ले सके, कि परमात्मा के प्रति ग्रेटीट्यूट और धन्यवाद पैदा हो। मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जो आंखों से सौंदर्य देखते-देखते उस सौंदर्य को भी देख ले, जो आंखों से दिखाई नहीं पड़ता है। मैं उस आदमी को धार्मिक कहता हूं, जो सुख को इस गहराई से भोगे कि सुख भौतिक न रहकर आध्यात्मिक होना शुरू हो जाय। एक फूल को देखते वक्त फिर फूल ही दिखाई नहीं पड़ता, जो देखना जानते हैं, उन्हें फूल के पीछे छिपी हुई आत्मा भी दिखाई पड़ने लगती है।

लेकिन अब तक की सारी की सारी व्यवस्था दुखवादियों की, पैसिमिस्ट की है। उन दुखवादियों ने मनुष्य के पूरे मन को आक्रान्त कर लिया

है। और बचपन से हम एक-एक बच्चे के मन में दुख के बीज बो रहे हैं। शायद बूढ़ों की ईर्ष्या भी काम करती है, और स्वाभाविक है, बूढ़ों से ज्यादा ईर्ष्यालु और कोई भी पृथ्वी पर नहीं होता। असल में ईर्ष्या और जेलेसी पैदा ही तब होती है, जब सामर्थ्य कम होती है। जितनी सामर्थ्य कम होती है, उतनी ईर्ष्या पैदा होती है। बूढ़े इस जिन्दगी से छीने जाते हैं, उनके हाथ से सब छिन रहा है, वे ईर्ष्या से भर गए होते हैं, और बच्चे उनके सामने हंसते हुए और नाचते हुए मालूम पड़ें, यह कष्टपूर्ण है न ? बूढ़े जाते-जाते इन बच्चों की खुशी को जहर से भर जायेंगे, पॉयजन से भर जायेंगे। लेकिन इससे बूढ़ों का कोई हित नहीं हो जाता। होना तो इससे उल्टा चाहिए, कि आने वाले बच्चे बूढ़ों की जिन्दगी को खुशी से भर दें, लेकिन अब तक हुआ उल्टा है, जाने वाले बूढ़ों ने बच्चों की जिन्दगी को दुख से भर दिया है।

मैं एक छोटी-सी किताब देख रहा था। एक अमरीकी बूढ़ी औरत, जिसकी उम्र सत्तर है, वह एक छोटे से चार साल के बच्चे के साथ रहना शुरू करती है, और अपने पूरे संस्मरण उस चार साल के बच्चे के साथ रहने के उसने लिखे हैं। वह एक संकल्प करती है, कि बच्चे को अपने साथ न रखेगी; खुद बच्चे के साथ रहेगी। यह संकल्प बहुत साधारण संकल्प नहीं है। वह बूढ़ी औरत यह तय करती है, कि बच्चा मेरे साथ नहीं रहेगा, मैं बच्चे के साथ रहूंगी। इसलिए बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि बच्चा रात दो बजे उठ आता है, और उस बूढ़ी का हाथ पकड़कर बाहर खींचने लगता है, कि बाहर अंधेरे में तारे चमक रहे हैं। लेकिन उस बूढ़ी ने तय किया है, कि उसे बच्चे के साथ रहना है, तो वह दो बजे रात उठती है। उस बच्चे के साथ रात के अंधेरे में जाती है, तारों को देखती है। उस बच्चे के साथ झींगुर की आवाज सुनती है, उस बच्चे के साथ समुद्र के फेन से खेलती है, उस बच्चे के साथ दौड़ती है, तितलियां पकड़ती है। दो वर्ष उस बच्चे के साथ उस बूढ़ी का जीवन, और उसने एक संस्मरणों की किताब लिखी है। उसने लिखा है, कि मैं फिर से वापस—वापस मेरा पुनर्जन्म, रीबर्थ हो गई। दो वर्ष उस बच्चे के साथ रहने से मेरी सब कुछ स्थिति बदल गई। अब मैं कह सकती हूं, बूढ़ी नहीं हूं। और मौत जब आयेगी, तो मैं मौत को भी उतनी ही जिज्ञासा और आनन्द से देख सकूंगी, जैसा छोटे बच्चे के साथ मैंने तितली को, फूलों को, तारों को देखा है। इस स्त्री का दो वर्ष में सारा व्यक्तित्व बदल गया, इसके चेहरे की रौनक बदल गयी, इसके चलने का ढंग बदल गया, क्योंकि उसको चार साल के बच्चे के साथ दौड़ना पड़ा, उसे चार साल के बच्चे के साथ नाचना पड़ा, उसे चार साल के बच्चे के साथ चिल्लाना पड़ा, उसे चार साल के बच्चे

के साथ जंगल के झाड़ों पर चढ़ना पड़ा, उसे समुद्र में उतरना पड़ा, और उसे नदी में तैरना पड़ा। उसने इस चार साल के बच्चे के साथ, दो साल अपना संकल्प पूरा किया। वह बच्चा तो विकसित हुआ, लेकिन उस बूढ़ी की जिंदगी में एक नयेपन का जन्म हुआ।

मेरी अपनी समझ है, कि अगर हमें मनुष्यता को सुखी करना है, तो हमें पुराने क्रम को बदलना पड़ेगा— बूढ़ों के साथ बच्चे नहीं; बच्चों के साथ बूढ़े। बूढ़ों को सब कुछ बच्चों को सिखाना छोड़ देना चाहिए। बहुत कुछ है, जो बच्चों से सीखने योग्य है, बहुत कुछ है, जो बच्चे ही सिखा सकते हैं, बहुत कुछ है, जो बच्चों के पास निर्दोष है, इनोसेंट है। बहुत कुछ है, जो बच्चों के पास ताजा है, जिन्दा है। बहुत कुछ है, जो बच्चों के पास अनअडल्ट्रेटेड है, अभी उसमें कुछ बिगाड़ा नहीं गया है। कहा जा सकता है, कि बच्चों की आंखों में अभी परमात्मा की झलक है, बच्चों के खेल में अभी परमात्मा की पुलक है, अभी बच्चों की अराजकता में, अभी परमात्मा का जो बड़ा अराजक जगत है, उसकी झलक है। लेकिन इसके पहले कि हम सीखें, हम बच्चों को बिगाड़ देंगे। इसके पहले कि बच्चे हमें कुछ दे पायें, हम बच्चों को सुधार देंगे। इसके पहले कि बच्चों से हमें कुछ मिल पाये, हम उनकी क्षमता को नष्ट कर देंगे। मनुष्य की विकृति में अब तक की सारी शिक्षा बूढ़ों से बच्चों की तरफ गई है। इसे मैं मूल आधार मानता हूं, मनुष्य की बीमारी में, इसे मैं बुनियादी आधार मानता हूं। काश! हमारे साधु-संत भी हमारे बच्चों से सीख सकें, काश! हमारे शिक्षक भी हमारे बच्चों से सीख सकें, क्योंकि एक बात तो पक्की है, कि बच्चे अभी-अभी आ रहे हैं,उस जगत से जहां से हमें आये बहुत देर हो गई। बच्चे अभी-अभी उस ओरीजनल स्रोत से, उस मूल स्रोत से आ रहे हैं, जहां से हमें आये बहुत वर्ष हो गए। अभी बच्चों की स्मृति उस मूल स्रोत के सम्बन्ध में हमसे ज्यादा ताजी है, कहें कि वे परमात्मा से हमसे ज्यादा निकट हैं, ठीक ऐसे ही जैसे आप तीस साल पहले किसी परदेस गये हों, और लौटे हों, और तीस साल में आपकी सब स्मृतियां धुंधली हो गयी हों, और आज ही कोई परदेस से लोटा हो, फिर नयी स्मृतियों के साथ, तो आप उससे सीखना चाहेंगे। लेकिन बड़े दुर्भाग्य की बात हुई है, कि बच्चों को हमने सिर्फ सिखाना चाहा। मैं देखता हूं, कि इसमें मनुष्य के रोग के बड़े गहरे आधार रख दिये गये हैं।

दूसरी बात, बच्चों को भी हम सिखा रहे हैं, वह हम बिना जाने सिखा रहे हैं। जीसस एक गांव में गये, और उस गांव के लोगों की भीड़ ने उन्हें घेर लिया है, और उनसे कुछ बातें पूछी हैं। और एक बात जीसस से

उस गांव के लोगों ने पूछी है, कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में कौन लोग प्रवेश कर सकेंगे ? तो जीसस ने एक बच्चे को उठाकर भीड़ में ऊपर किया है, और कहा है, "वे, जो इस छोटे बच्चे की भांति होंगे।" नहीं कहा कि वे जो छोटे बच्चे हैं, वे; बल्कि कहा कि जो इस छोटे बच्चे की भांति होंगे। एक बच्चे का भी आनन्द उतना बड़ा नहीं हो सकता, जितना एक बूढ़ा अगर फिर से बच्चा हो जाय, तो उसका होगा। क्योंकि बच्चे के आनन्द में अनुभव की कमी है, बच्चे के आनन्द में ज्ञान का विस्तार नहीं है, बच्चे के आनन्द में जीवन की समृद्धि नहीं है। बच्चे का आनन्द पिछला ही होगा लेकिन एक बूढ़ा अगर फिर से बच्चा हो जाय, तो उसके आनन्द का हम कोई हिसाब नहीं लगा सकते ! एक छोटी-सी कहानी से समझाने की कोशिश करूं—

मैंने सुना है कि एक बहुत अमीर आदमी, जिसने दुनिया में जो कुछ मिल सकता था, वह सब पा लिया है, लेकिन उसे सुख नहीं मिला। वह सुख की तलाश में निकला है, और फिर वह एक गांव में गया है, और उस गांव के बाहर लोगों से उसने पूछा है कि कोई आदमी तुम्हारे गांव में होगा, जो मुझे सुख की कोई खबर बता सके ? वह अपने घोड़े पर हीरे जवाहरातों से भरा हुआ एक थैला लिए हुए है। उसने कहा कि मैं यह करोड़ों रुपये के हीरे जवाहरात उसके चरणों में पटक दूंगा। गांव के लोगों ने कहा, एक आदमी हमारे गांव में है, शायद वह कुछ काम में पड़ जाय, क्योंकि जब और कोई काम नहीं पड़ता, तो वह आदमी काम पड़ जाता है। तुम उसे खोजो, गांव में पूछ लेना, कि मुल्ला नसरुद्दीन कहां है ? वह गांव का एक फकीर है। पूछता हुआ वह अमीर आदमी, उस मुल्ला नसरुद्दीन के पास गया। वह झाड़ के नीचे बैठा है, सांझ सूरज ढल रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन से उसने कहा कि मेरी जिन्दगी में सब कुछ है, सिर्फ सुख नहीं है, और मैं यह करोड़ों रुपयों के हीरे जवाहरात उस आदमी के चरणों में पटकने को निकला हूं, जो सुख की एक झलक दिखा दे। नसरुद्दीन ने उस आदमी की तरफ देखा, और कहा कि नीचे उतर आओ, झलक मैं दिखा दूंगा। वह आदमी नीचे उतर आया। बहुत लोगों के पास गया, किंतु किसी ने यह हिम्मत नहीं की कि झलक दिखा सके। लोगों ने बड़े उपदेश दिये, समझाया, लेकिन लोगों ने कहा, हम कैसे झलक दिखायेंगे, झलक तुम्हें देखनी पड़ेगी। वह अमीर आदमी फकीर के कहने पर झोला नीचे रखने लगा। उसे पता नहीं था, कि ऐसा होगा। वह झोला नीचे रख भी नहीं पाया था कि नसरुद्दीन झोला उठाकर भाग खड़ा हुआ। एक क्षण तो वह अवाक् रह गया। फिर चिल्लाया, और भागा, और कहा कि चोर है यह आदमी, मैं मर गया, मेरी जिन्दगी की सारी कमाई गई। वह

गांव में भाग रहा है, नसरुद्दीन के पीछे। गांव नसरुद्दीन का परिचित है, गली कूचे उसे मालूम हैं। वह आदमी अजनबी है, चिल्लाता बहुत है, लेकिन दौड़ नहीं पाता। और सारे गांव के लोग भी देख रहे हैं, कि यह क्या हो गया। सारी दौड़ के बाद, सूरज ढल गया है, नसरुद्दीन गांव के बाहर उसी झाड़ के पास आ गया है, जहां घोड़ा खड़ा है अमीर का। थैली उसने घोड़े के पास पटक दी। झाड़ के पीछे छिपकर खड़ा हो गया। वह अमीर आदमी भागा हुआ आया, हांफता हुआ, रोता-चिल्लाता, झोले को उठाकर छाती से लगाया, और उसने कहा, हे! भगवान, तेरा बड़ा धन्यवाद है। नसरुद्दीन ने कहा, झलक मिली? उस आदमी ने कहा, यह भी कोई ढंग है, झलक दिखाने का? नसरुद्दीन ने कहा, इसके अलावा कोई ढंग न था। तुमने कभी भगवान को धन्यवाद दिया था? नसरुद्दीन ने कहा, जरूरी था, कि जो तुम्हारे पास है, वह खो जाय, ताकि तुम्हें पता चल सके कि वह तुम्हारे पास था। और जरूरी है कि वह तुम्हें वापस मिले, ताकि तुम अनुग्रहीत हो सको। अब और ज्यादा सुख न दूंगा, नहीं तो तुम दिक्कत में पड़ सकते हो—मुल्ला ने कहा।

बच्चे के पास समृद्धि होती है, बूढ़े के पास खो गई होती है। और अगर कोई बूढ़ा फिर से बच्चा हो जाय, तो परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भर पाता है कि उसे वापस मिल गया खजाना, उसे झलक दिखी। उसकी संपत्ति छीनी गयी और वापस लौटी। लेकिन इसके पहले कि किसी बूढ़े को संपत्ति मिले, हम सब मिलकर बच्चों की संपत्ति मिटाने की कोशिश में लग जाते हैं। बच्चों के साथ जितना अन्याय हुआ है पृथ्वी पर, उतना किसी के साथ नहीं हुआ है। ऐसा नहीं कि आप ही कर रहे हैं, आपके साथ भी किया गया है। ऐसा नहीं, कि जिन्होंने आपके साथ किया है, उन्होंने ही किया है, उनके साथ भी ऐसा ही किया गया है। हजारों साल से एक अद्‌भुत चक्र है, वह यह है कि बूढ़े बच्चों को शिक्षा दे रहे हैं, और बच्चों से बिल्कुल नहीं सीख रहे। जबकि बच्चों से जिन्दगी की पुलक और जिन्दगी का आनन्द सीखना जरूरी है। एक जिन्दगी, एक समाज जो सिर्फ बूढ़े बनायेंगे, उदास और बीमार होगा। मरने के करीब पहुंचने वाले लोग जो सूत्र रचेंगे, वे जिन्दगी के सूत्र नहीं हो सकते। सांझ को जमीन पर गिर जाने पर फूल कहानी लिखेंगे, वे खिलने वाले फूलों की आवाज नहीं हो सकते। लेकिन ऐसा हुआ है। अब इसके दो परिणाम हो रहे हैं, एक परिणाम तो यह है, कि आदमी पागल हुआ जा रहा है, दूसरा परिणाम यह है, कि बच्चों ने बूढ़ों से सीखने से इन्कार करना शुरू कर दिया है, इसलिए सारी दुनिया में बच्चों की बगावत है। यह बगावत अर्थपूर्ण है। इस बगावत को सिर्फ नासमझी मत

समझ लेना आप, कि यह बच्चों की नासमझी है। यह हजारों साल के बाद यह बहुत कीमती अवसर आया है, कि बच्चे अब सीखने से इन्कार कर रहे हैं। मैं इसे शुभ लक्षण मानता हूं, और अच्छा होगा कि जल्दी ही इस बात को समझ लें, कि यह बगावत क्या सूचना दे रही है ? ये चाहे हिप्पी हों, चाहे बीटनिक हों, और चाहे नक्सली हों, और चाहे इनका नाम दुनिया में कुछ भी हो, सारी दुनिया में पिछले दस वर्षों में एक चीज सघन होती जा रही है, और वह यह कि बच्चे बूढ़ों से सीखने से इन्कार कर रहे हैं। मैं मानता हूं कि यह एक बहुत बड़ी क्रांति का क्षण है। इससे शुभ फलित हो सकता है। इससे अशुभ भी फलित हो सकता है। अगर हमने इस बात की सार्थकता को नहीं समझा, तो अशुभ फलित हो सकता है। अगर हमने इस बात की सार्थकता को समझा, और इस क्रांति के क्षण का उपयोग कर लिया, तो आने वाली मनुष्य जाति अतीत के दुख के पार जा सकती है।

दूसरी बात जो मैं आपसे कहना चाहता हूं, वह यह कि हम प्रत्येक चीज में कन्डमनेशन का, निन्दा का एक दर्शन लिए बैठे हैं, प्रत्येक चीज में। ऐसा कोई शास्त्र नहीं है, जो यह कहता हो कि परमात्मा ने इस पृथ्वी पर आपको, आपके किसी पुण्य फल को देने के लिए भेजा, सभी शास्त्र कहते हैं—कि पापों का फल भोगने के लिए पृथ्वी पर आना हुआ है। यह जेल की भांति जगह है, यह कारागृह है, यहां दण्ड भोग रहे हैं हम सब। स्वभावतः, जेलखाने में आप जाकर देखें, तो कैसी उदासी, कैसा दुख, कैसी पीड़ा ! और जेलखाने में कोई जेलखाने को सजाता नहीं है, चाहे उस आदमी को दस साल उस कोठरी में रहना हो, तो भी उस दीवाल पर एक चित्र नहीं बनायेगा। क्योंकि है, वह जेल। वहां कोई रहना नहीं है, वहां से जाना है। वहां से हर आदमी जाने की तैयारी में है।

मैंने तो सुना है कि एक आदमी जेलखाने में गया, तो पहले जो उस कोठरी में आदमी मौजूद था, उसने पूछा कि तुम्हें कितनी साल की सजा हुई है ? उस आदमी ने कहा, कि मुझे सत्तर साल की सजा हुई। उसने कहा कि तुम जरा पीछे बैठो। मुझे पचास साल की सजा हुई है, मेरे बाहर निकलने का मौका पहले आयेगा, तुम पीछे ठहरो, मैं जरा दरवाजे के पास रुकूंगा। पचास साल, लेकिन पचास साल कोई घर को जेल नहीं बना सकता। सत्तर साल वाले को वह कह रहा है, जरा पीछे रुको, मुझे दरवाजे के पास रहने दो, मेरे छूटने का मौका पहले आने वाला है। जेल, घर नहीं बन सकता। यह पृथ्वी घर नहीं बन पायी, यह आज तक घर नहीं बन पायी, क्योंकि सारे धर्म इसे पापों के दण्ड पाने की जगह बता रहे हैं। यह कालापानी है, अण्डमान नीकोबार

है, यहां सब अपराधी भेजे जा रहे हैं। सारी दुनिया में जो अपराध हो रहे हैं, उन अपराधियों को दण्ड भोगने के लिए पृथ्वी पर भेजा जा रहा है। क्या पागलपन है, किन पागलों ने ये खयाल पैदा किये होंगे ? और जब जिन्दगी को हम कारागृह समझ लेंगे, तो फिर जिन्दगी उदास हो ही जाने वाली है। फिर जिन्दगी से हम कभी रस और आनन्द को उपलब्ध नहीं कर पा सकते हैं। और जहां आनन्द न मिले, वहां आदमी विक्षिप्त ही होगा, और क्या हो सकता है ? इस जिंदगी को हम अब तक स्वीकार नहीं कर पाये, एक अहो-भाव पैदा नहीं कर पाये, कि हम कह सकें कि एक अहोभाव है कि परमात्मा ने मुझे मौका दिया है, कि मैं भी इस पृथ्वी पर हो सकूं। और बसंत में फूल खिलें, तो देख सकूं और पूर्णिमा को शरद पूनम का चांद हो, तो उसके नीचे नाच सकूं। और लोग मेरे आस-पास हों, तो उन्हें प्रेम कर सकूं। नहीं, यह एक अवसर नहीं है, परमात्मा की तरफ से, एक दण्ड है। मैं मानता हूं कि जिन्होंने भी यह फिलासफी दुनिया को दी, उनका मन किसी न किसी तरह न्यूरोटिक, उनका मन किसी न किसी तरह रुग्ण और पागल होना चाहिये। ये नाम कितने ही बड़े हों, इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि यह बड़े मजे की बात है, कि आमतौर से पागल जो भी काम करते हैं, वे बड़ी व्यवस्था से करते हैं। अगर वे फिलासफी भी बनाते हैं, तो बड़ी सिस्टमैटिक बनाते हैं। अगर वे दुनिया को कोई दर्शन दे जाते हैं, शास्त्र दे जाते हैं, तो वह भी बहुत ढंग से और तर्क से दे जाते हैं। हमने अपने दुखों को स्वीकार कर लिया है, और अपने नियम खोज लिए, कि हम दुखी क्यों हैं ? पहली तो बात कि हम दुखी हैं, इसलिए कि हम पापों का फल भोग रहे हैं, अनन्त जन्मों के पापों के फल हैं, वह हमें भोगने मिल रहे हैं। इससे ज्यादा खतरनाक दृष्टि और क्या हो सकती है ! मैं आपसे कहना चाहता हूं, हम किन्हीं पापों का फल नहीं भोग रहे हैं, हम सिर्फ परमात्मा के आनन्द की लहरें हैं !! कोई समुद्र में जो लहरें उठ रही हैं, वह किसी पापों का फल नहीं है, और वृक्षों पर जो फूल खिल रहे हैं, वह भी किसी पापों का फल नहीं है। तो यह आदमी जो पैदा हो रहा है यह पापों का फल है ? ये भी आनन्द की लहरें हैं। ये भी जीवन ऊर्जा का खेल है, यह भी लीला है। यह जो विराट जीवन की ऊर्जा है, यह जो विराट जीवन की इनर्जी है, जिसे इनाइलेन वाइटल कहता है वर्गसन। यह इसे हम परमात्मा कहना चाहें तो परमात्मा कहें, यह जो क्रिएटिविटी है जगत की, इससे जैसे और सब चीजें अनन्त-अनन्त रूपों में खिल रही हैं, वैसा मनुष्य भी खिल रहा है। लेकिन, फूल अपने को स्वीकार करते हैं, तारे अपने को स्वीकार करते हैं, पक्षी अपने को स्वीकार करते हैं। मनुष्य अकेला प्राणी है, जो अपने को स्वीकार नहीं करता। यह उसकी बेसिक डिसीज है।

आदमी अपने को स्वीकार नहीं करता है, वह निरन्तर कहता है कि मुझे कुछ और होना है, जो मैं हूं, वह नहीं। उसकी एक ही विक्षिप्तता है कि मुझे कुछ और होना है। जो गरीब है, उसे अमीर होना है और बड़े मजे की बात है, कि जो अमीर है, वह गरीब होने की कोशिश में लग जाता है। महावीर अमीर के घर पैदा होते हैं, बुद्ध अमीर के घर पैदा होते हैं, राजा के घर पैदा होते हैं, लेकिन जब तक वे सड़क पर भीख नहीं मांग लेते, तब तक उनकी तृप्ति नहीं है। यह बड़ी मजे की बात है। अगर अमीर के घर में कोई पैदा हो जाय, तो उसे गरीब होना है, गरीब के घर कोई पैदा हो जाय, उसे अमीर होना है। किसी के बिल्कुल वस्त्र न हों, तो उसे सम्राटों के वस्त्र चाहिए, और किसी को सम्राटों के वस्त्र मिल जायं, तो उसे नग्न हुए बिना कोई रास्ता नहीं है। अगर आपको महल मिल जाय, तो आप महल त्याग करने की कोई न कोई फिलोसफी खोज लेंगे। अगर आपको झोपड़ी मिल जाय, तो आप महल बनाने के लिए कोई न कोई दौड़ तैयार कर लेंगे।

आदमी जो है, उसके लिए भर राजी नहीं है, यह तो मैंने मोटी बात कही, बहुत गहरे में भी भीतर आदमी जो है, उसके लिए राजी नहीं है। कुछ और चाहिए, सबको कुछ और चाहिए। ऐसा नहीं है, कि वह मिलने से कोई फर्क पड़ेगा। वह मिलते ही फिर कुछ और चाहिए। बहुत गहरे में, हम अपने को स्वीकार नहीं कर पाते, अस्वीकार किये जाते हैं। पक्षी आनन्दित हैं, वे सुबह गीत गा पाते हैं। हम सुबह थके-मांदे ही उठते हैं, सुबह हम गीत नहीं गा पाते। क्योंकि दिन हमारे लिए एक दौड़ की तरह आता है। सुबह फूल खिल जाते हैं, लेकिन हम नहीं खिल पाते। दिन हमारे लिए फिर चिन्ताओं के बोझ की तरह आते हैं। जिन्दगी हमारे लिए एक टैंशन है, जिसमें दौड़े जाना है, दौड़े जाना है, इतनी भी फुर्सत नहीं है जानने की, हम में से बहुतों को कि हम कहां दौड़ रहे हैं, और किसलिए दौड़ रहे हैं ? और अगर कोई पूछे भी तो हम उससे कहेंगे कि बेकार की बातों में समय मत खराब करो। इतनी देर में मैं और थोड़ा दौड़ लेता, जोर से दौड़ना है। हम सब दौड़े चले जा रहे हैं, कुछ और होने का, बिकमिंग का एक पागलपन है, जो पूरे वक्त हमें पकड़े हुए है। और आनन्द के साथ एक कठिनाई है, आनन्द सदा बीइंग के साथ है, बिकमिंग के साथ आनन्द कभी भी नहीं है। जिस आदमी को कुछ होना है, उसने दुखी होने का रास्ता खोज रखा है। जो जो है, उसके साथ आनन्दित हो सकता है, वही आनन्दित हो सकता है। मैं जो आज हूं, अगर मुझे आज की शरदपूर्णिमा का आनन्द लेना है, तो शरदपूर्णिमा का चांद मुझे आनन्द नहीं दे सकता। आनन्द तो इस पूर्णिमा के नीचे खड़ा हुआ है, जो मैं हूं,

अगर वह मुझे स्वीकृति दे, तो ही मैं आनन्दित हो सकता हूं। चांद आनन्दित है, क्योंकि उसे और होना नहीं है, जो है, वह है। हम दुखी उस चांद के नीचे चलते रहेंगे, क्योंकि हमें कुछ और होना है। जब तक हम वह न हो जायं तब तक चांद हमें दिखाई नहीं पड़ सकता।

जिन्दगी को हम चूकते हैं कुछ और होने में। न गा पाते, न नाच पाते, न धन्यवाद दे पाते, न हम प्रेम कर पाते, न हम प्रेम ले पाते, न हम सुखी हो पाते, न हम सुख दे पाते, क्योंकि समय नहीं है, दौड़ है, कल। कल कुछ करेंगे, सारे लोग कल के लिए भागे हुए हैं। यह कल की दौड़ धर्म के अर्थों में मोक्ष बन जाती है, वह भी कल है, स्वर्ग बन जाती है, वह भी कल है। धनी के अर्थों में कल बन जाती है—कोई करोड़पति होना है, कोई अरबपति होना है। संन्यासी के लिए कल बन जाती है जब परमात्मा उसको मिलेगा, तब वह खुश होगा। सबके लिए कल है। आज है, लेकिन आज किसी के लिए नहीं है।

जीसस एक गांव से गुजरते हैं। लिली के फूल खिले हैं, सुबह का वक्त है और सूरज निकला है, और जीसस अपने साथियों से कहते हैं, कि तुम यह लिली के फूल देखते हो? तुमने ये लिली के फूल देखे? सोलोमन सम्राट जब अपने पूरे यश गौरव में था, तब भी इतना सुन्दर नहीं था, जितना ये गरीब लिली के फूल हैं! ये गरीब फूल जितने सुन्दर हैं, उतना सम्राट सोलोमन सुन्दर नहीं था, लेकिन वे सिर्फ ठगे से खड़े रह जाते हैं। उनकी समझ में कुछ भी नहीं आता। लिली के फूल तो गांव-गांव के बाहर लगे हैं। उन्हें कुछ खास दिखाई नहीं पड़ता। वह कहते हैं, ये बड़े साधारण फूल हैं, ये तो गांव-गांव में सब जगह लगे रहते हैं। आप ऐसा क्यों कहते हैं? कहां सोलोमन, और कहां लिली के साधारण फूल? जीसस कहते हैं, गौर से देखो। सोलोमन इतना प्रसन्न कभी भी न था, क्योंकि सोलोमन आज में नहीं हो सकता था, वह सदा कल था। जो कल में है, वह चिन्ता में होगा। कल ही चिन्ता का दूसरा नाम है, कल का अर्थ है, एंग्जाइटी। जो कल में जियेगा, वह चिन्ता में जियेगा, परेशानी में जियेगा। जो आज जी सकता है, वह खिल सकता है, सब फ्लावरिंग आज है, कल सिर्फ चिन्ता है। और ऐसा नहीं है कि कल कभी आयेगा, वह कभी आता भी नहीं। जब आप कल तक पहुंचेंगे, तो आज हो चुका होगा। और यह कल की आदत हेबिट फार्मिंग है। जब आप कल पर पहुंचेंगे, तो आगे वाले कल की चिन्ता शुरू हो जायेगी। कल को भी आप खोयेंगे, आने वाले कल को भी खोयेंगे, रोज आप खोते जायेंगे, क्योंकि समय जब भी आता है, वह आज की भांति आता है, समय कभी कल

की भांति आता नहीं, और हम सब कल के मन से जीते हैं। तनाव, बेचैनी, परेशानी, दुख के अतिरिक्त हमारी कोई नियति नहीं बन पाती। ऐसा यह जो आदमी है, ऐसा आदमी एक बीमारी है, ऐसा आदमी आदमी ही नहीं है। ऐसा लगता है कि आदमी जो हो सकता था, वह होने से चूक गया है। कहीं कोई चीज चूक गयी है। कहीं रास्ते से कोई पटरी उखड़ गयी है, कहीं हम किसी और रास्ते पर चले गये हैं, जो हमारा भाग्य नहीं है, जो हमारी नियति नहीं है। इसलिए हम कुछ भी हो जायं, बेचैनी हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

कहीं मैंने एक वचन पढ़ा है, पढ़ा है मैंने—आदमी को मयस्सर नहीं इंसां होना—बहुत हैरानी का वचन मुझे लगा, कि आदमी को आदमी होना संभव नहीं, तो फिर आदमी को और क्या होना संभव हो सकता है ? अगर आदमी आदमी नहीं हो सकता, तो और क्या हो सकता है ? फिर तो और कुछ भी नहीं हो सकता। लेकिन आदमी सब कुछ होना चाहता है, सिर्फ आदमी नहीं होना चाहता, क्योंकि आदमी होना तो आज और अभी है, हियर एण्ड नाऊ, वह तो इसी क्षण में होना होगा, इसी क्षण में हम हैं। काश, हम स्वीकार कर सकें, कि जो हम हैं, उसके लिए राजी हो सकें, तो जिन्दगी तत्काल आनन्द के द्वार खोल देती है। सब तरफ से मंदिर के द्वार खुल जाते हैं, और मंदिर की घण्टियां बुलाना शुरू कर देती हैं। सब तरफ से पूजा और आरती होनी शुरू हो जाती है—जो हम हैं। लेकिन हम जो हैं, उससे राजी नहीं हैं। हम कहते हैं, मुझे कुछ और होना है, और तब हम दौड़ते चले जाते हैं। और जो मंदिर हमें भीतर बुला सकता था; उस मंदिर के चारों तरफ चक्कर काटते-काटते गिरते हैं, और मर जाते हैं। जीवन एक अतृप्ति की लंबी कहानी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो पाता है। ऐसा आदमी एक बीमारी है, लेकिन ऐसे आदमी आप हों, यह आपका चुनाव है, न हों, यह आपका निर्णय है। ऐसे हम हैं, लेकिन हम चाहें, तो इसको ट्रांसेन्ड कर सकते हैं, इसके पार जा सकते हैं। कल को भूल जायं, इसका यह मतलब नहीं है, कि कल नहीं होगा। इसका यह भी मतलब नहीं है, कि कल ट्रेन पकड़नी हो तो आज आप टिकट नहीं खरीदेंगे। इसका यह मतलब भी नहीं है, कि कल कहीं जाना हो, तो आज उसका विचार नहीं करेंगे, यह मैं नहीं कह रहा हूं। नहीं, जीने के लिए कल नहीं है, जीना तो आज है। जीने की योजनाएं कल होंगी, लेकिन जीना आज है। जीने के काम कल होंगे, लेकिन जिन्दगी की पुलक आज है, हृदय को धड़कना आज है। श्वास अभी लेनी है, प्रेम अभी करना है, आनन्दित अभी होना है, रस अभी लेना है, गीत अभी

गाना है। जिन्दगी के काम-धाम की दुनिया कल भी फैलेगी, लेकिन आपका होना, आपका अस्तित्व, आपका बीइंग जितने गहरे में आज के क्षण से जुड़ जाय, उतने आपके विक्षिप्त होने की सम्भावना समाप्त हो जायेगी, उतने आप तृप्त, उतने आप संतुष्ट, उतने आप आनन्द से भरे हुए होंगे। ऐसा नहीं है, कि इसका अर्थ होगा कि आप स्टेगनेंट हो जायेंगे, आप रुक जायेंगे, कि मर जायेंगे, ऐसा नहीं है। नहीं, आज की धारा आपको कल भी ले जायेगी। गंगा भी बहती है, आने वाले कल की कोई फिक्र नहीं है, लेकिन आज की धारा कल भी पहुंच जाती है, सूरज भी चलता है, कल सुबह ऊगेगा, इसकी चिन्ता आज नहीं है, लेकिन आज का जीवन कल भी ऊगता ही है।

कल तो होता ही रहा है, होता ही रहेगा, सिर्फ सवाल यह है, कि मेरा मन आज कल से अटक जाय, तो मैं चूक जाऊंगा आज, और मेरा आज से चूक जाना मेरी डिसीज, मेरी बीमारी, मेरा पागलपन बन जाता है। और हम सब कल में उलझे हुए लोग हैं, इसलिए हम सब चिन्तित और परेशान हैं। फिर अगर मंदिर भी हम पहुंचते हैं, तो वह मंदिर भी कल के लिए है, अगर प्रार्थना भी करते हैं, वह प्रार्थना भी कल के लिए है। अगर कोई ध्यान में भी बैठता है, तो वह ध्यान भी कल के लिए है। नहीं, न कोई ध्यान कल के लिए है, न कोई प्रार्थना, न कोई मंदिर, न कोई परमात्मा। परमात्मा है, तो अभी और इसी क्षण में हम उससे जुड़ सकते हैं। एक क्षण को भी कोई आदमी अपने को स्वीकार कर ले, तो परमात्मा के द्वार पर खड़ा हो जाता है, और स्वास्थ्य की अनन्त सम्भावनायें प्रगट हो जाती हैं। यह हमारा शब्द स्वास्थ्य बहुत अद्भुत है। इस सम्बन्ध में दो शब्द और अपनी बात मैं पूरी करूं।

यह शब्द बहुत कीमती है, अंग्रेजी के हैल्थ शब्द में वह बात नहीं है। अंग्रेजी का हेल्थ शब्द तो मैडिसन का शब्द है, औषधिशास्त्र का शब्द है। हीलिंग से बना है, घाव भर जाय, लेकिन हमारा स्वस्थ, स्वास्थ्य शब्द बहुत अद्भुत है, वह बहुत आध्यात्मिक है। स्वस्थ का अर्थ है, जो स्वयं में है। वन, हू इज इन वनसेल्फ, उसका अर्थ हीलिंग नहीं है, उसका मतलब है, जो अपने में जी रहा है। जो अपने में मौजूद है, जो अपने साथ है, जो अपने भीतर गहरे में है, जिसकी रूट अपने भीतर चली गयी हैं, जिसकी जड़ें अपने में हैं। हां, जिसके फूल आकाश में खिलेंगे, लेकिन जिसकी जड़ें अपने भीतर हैं। जो सेल्फरूटेड है, जिसकी जड़ें भीतर स्वयं में पहुंच गयी हैं, जो अपनी भूमि पर खड़ा है, ऐसे व्यक्ति को हम स्वस्थ कहते हैं। चाहे शरीर का सवाल हो, चाहे मन का, और चाहे आत्मा का, अगर शरीर अपने में है, तो स्वस्थ होता है। जब आपके सिर में दर्द होता है, तो उसका इतना ही मतलब होता है, कि

शरीर अपने में नहीं है। जब आपके पैर पेरलाइज्ड हो जाते हैं, तो उसका मतलब यही होता है कि शरीर अपने में नहीं है। शरीर चूक गया कहीं, अपने होने से। जब आपका मन चिंता से भरता है, तो उसका अर्थ है मन अपने में नहीं है, मन चूक गया। जब आपकी आत्मा भी अपने में नहीं होती, और कुछ और होना चाहती है तब वह आत्मा भी चूक जाती है। हम चूकते चले जाते हैं, अपने में नहीं हो पाते। अपने में हम हो जायं, तो हम स्वस्थ हो जाते हैं।

मनुष्य अपने में हो जाय, तो इस पृथ्वी पर न तो इतना सुन्दर कोई फूल है, जैसा मनुष्य है, और न कोई इतना चमकता हुआ तारा है, जैसा मनुष्य है, न कोई इतना गीत गाता हुआ झरना है, जैसा मनुष्य है। न कोई ऐसी चांदनी रात है, जैसा मनुष्य है। न कोई समुद्र की लहर इतने आनन्द से भरी है, जितना मनुष्य है, क्योंकि ये सब सोये हुए बेहोश हैं, जबकि आदमी जागा हुआ है, होश में है। उसका आनंद एक होशपूर्ण आनन्द है, उसका गीत एक जागृत गीत है। लेकिन जो सबसे ज्यादा संभावना है, जिसकी आनन्द की ऊंचाइयों के लिए, स्वभावतः सबसे ज्यादा गिर जाने की दूसरी संभावना है। जो लोग जमीन पर सीधे चलते हैं, उनके गिरने का डर कम है, लेकिन जो एवरेस्ट की चोटियां छूना चाहें, उनको एवरेस्ट जितनी गहरी खाइयों में गिरने की भी संभावना को स्वीकार करना पड़ता है। आदमी खाइयों में गिर गया है, क्योंकि चेतना की बहुत ऊंचाइयों पर उठ सकता है। जो उसकी पोटेंशियलिटी है, जो उसकी संभावना है, वही उसका दुख भी बन जाता है। आदमी इतना ऊपर उठ सकता है, कि परमात्मा हो जाय, इसीलिए इतना नीचे भी गिर जाता है, कि पक्षी और पत्थर भी नहीं रह जाता। पक्षी और पत्थर भी जितने आनन्दित मालूम होते हैं, उतना आनन्दित भी नहीं रह जाता। यह मनुष्य की दोनों संभावनाएं हैं। इनमें हम क्या चुनते हैं, यह हम पर निर्भर है। आज तक मनुष्य जाति के बड़े हिस्से ने दुख चुना है, बीमारी चुनी है, चिन्ता चुनी है, पागलपन चुना है, साधारणतः हम भी वही चुने चले जाते हैं, और ऐसा लगता है, कि धीरे-धीरे शायद पूरी पृथ्वी एक मैड हाउस होकर रहेगी, करीब-करीब हो गयी है। कुछ नहीं कहा जा सकता है, किस दिन, तय करना मुश्किल हो जायेगा, कि अब कौन आदमी पागल नहीं है? करीब-करीब ऐसी हालत हो गयी है। सारे राजनीतिज्ञ, सारे धर्मगुरु, सारे साहित्यिक, सारे कलाकार ऐसे मालूम पड़ रहे हैं, कि एक विक्षिप्तता की गहरी दौड़ में दौड़ रहे हैं। अगर चित्रकारों के चित्र देखें, अगर पिकासो के चित्र देखें तो ऐसा लगता है, कि आदमी कहीं विक्षिप्त हो गया है। अगर इजरा-पाउन्ड की कविताएं पढ़ें, तो ऐसा लगता है, कि आदमी कहीं विक्षिप्त हो गया

है। अगर राजनीतिज्ञों की चालें देखें—चाहे माओ की, चाहे निक्सन की, तो ऐसा लगता है, कि आदमी सब तरफ से पागल हुआ जा रहा है।

क्या कोई संभावना आदमी के स्वस्थ होने की नहीं है ? मैं मानता हूं, संभावना है। वह आपसे शुरू होती है, वह प्रत्येक से शुरू होती है। शायद पूरी पृथ्वी को हम स्वस्थ करने के पागलपन में नहीं पड़ सकते हैं, लेकिन अपने को स्वस्थ करने की समझदारी बरती जा सकती है। और ऐसा मुझे लगता है, कि अगर एक आदमी भी हमारे बीच पूरी तरह स्वस्थ हो, तो वह एक जलता हुआ दिया बन जाता है, और आस-पास के बुझे दियों के लिए भी प्रेरणा सिद्ध होता है।

मैंने ये थोड़ी-सी बातें कहीं, इस आशा में कि आप सोचेंगे, मेरी बातों को मानने की जरा भी जरूरत नहीं है। क्योंकि पता नहीं, मैं खुद भी एक पागल आदमी होऊं, और आपसे कुछ बातें कह रहा हूं। जरूरी नहीं है, मेरी बातों को मान लेना। मेरी बातों को सुना—पक्का नहीं है, कि आपने सुना ही हो, क्योंकि बहुत ही कम लोग यहां मौजूद होंगे। वहां जा चुके होंगे, कुछ लोगों को जहां इसके बाद जाना है। कुछ लोग अभी वहीं होंगे, जहां से वे आये हैं। शायद कोई यहां पहुंच गया हो आप में से, तो उसने मेरी बातों को सुना होगा। उनसे मेरी प्रार्थना है, जिन्होंने सुना हो, कि मान नहीं लेंगे, सोचेंगे। बहुत बड़ा सोचने का क्षण आदमी के सामने आ गया। एक-एक कदम सोचकर उठाने जैसा है, क्योंकि खतरा बहुत ज्यादा है, और खाई बहुत निकट है। और जरा-सी चूक, और पूरी मनुष्यता समाप्त हो सकती है, लेकिन पूरी मनुष्यता समाप्त हो या न हो, यह आपकी जिम्मेवारी नहीं है, एक जिम्मेवारी जरूर आपकी है, कि आप इसके पहले कि समाप्त हों, अपने जीवन की गहराई; इसके पहले कि समाप्त हों, अपने जीवन की ऊंचाई; इसके पहले कि समाप्त हों, अपने जीवन के पूरे नृत्य; इसके पहले कि समाप्त हों, अपने जीवन का पूरा अस्वाद, अपने जीवन की पूरी निर्दोषता, और जीवन की पूरी सरलता, को अनुभव करके जा सकें, ऐसी मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं, क्योंकि अन्यथा हमारा आना बिल्कुल व्यर्थ है, हमारा जाना व्यर्थ है, हमारा होना व्यर्थ है। यह सार्थक हो सकता है। थोड़ा सोचें, और अपने को पागलों की दुनिया से थोड़ा बाहर हटायें, और अपने पागलपन की ओर बढ़ते हुए कदमों को थोड़ा लौटायें, और थोड़ा देखें, कि आपके पैर किस तरफ चले जा रहे हैं ? एक छोटी-सी कहानी से अपनी बात मैं पूरी कर दूं—

मैंने सुना है कि एक आदमी एक युनिवर्सिटी को खोज रहा था। उसके आफिस को खोज रहा था, लेकिन ठीक युनिवर्सिटी के सामने एक पागलखाना

भी था। जैसी है आज हालत, करीब-करीब सब युनिवर्सिटीज के सामने पागलखाना बनाना ही पड़ेगा। वह कुछ बुद्धिमान लोग रहे होंगे, उन्होंने बना रखा था। वह भूल से आदमी युनिवर्सिटी के चपरासी के पास न जाकर पागलखाने के चपरासी के पास पहुंच गया। दोनों के दरवाजे एक से थे। तो उसने पूछा कि मैं युनिवर्सिटी का आफिस खोज रहा हूं, लेकिन दरवाजे दोनों एक से हैं। इन दोनों में कौन-सी जगह युनिवर्सिटी है, और दरवाजे एक से क्यों हैं? कोई फर्क क्यों नहीं किया गया? तो उस चपरासी ने कहा, कि फर्क ज्यादा नहीं है, इसलिए दरवाजे एक से हैं। थोड़ा-सा वैसा फर्क है—पागलखाने में जो भी आता है, जब तक ठीक न हो जाय, निकल नहीं सकता। इतना ही फर्क है। युनिवर्सिटी में जाकर हालत उल्टी है, जब तक बिगड़ न जाय, तब तक निकल नहीं सकता। उसने कहा, मैं बहुत दिनों से यहां चपरासी का काम करता हूं, यही फर्क देख पाया हूं, और ज्यादा कोई फर्क मुझे दिखायी नहीं पड़ा है।

हमारे कदम पागलखानों की तरफ बढ़ते जा रहे हैं। वह न बढ़ें, जितना सचेत हम हो सकें, उतना अच्छा है, खुद के लिए भी, सबके लिए भी, भविष्य के लिए भी।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत अनुग्रहीत हूं, और अन्त में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

●●

अनशन और उपवास

अनशन का मतलब है भूखे रहना; उपवास का मतलब है इतने आनन्द में होना कि भूख का पता भी न चले। वह बात ही और है। उपवास का मतलब है भीतर और भीतर, पास और पास होना—अपने पास होना। जब कोई आदमी बहुत गहरे में अपने पास होता है, तो शरीर के पास नहीं हो पाता, इसलिए शरीर की भूख-प्यास का उसे स्मरण नहीं हो होता। शरीर के पास होंगे तभी तो खयाल आयगा! ०

मुक्त स्वर

भ्रान्ति

ऐसा लगा
हूं— बोधपूर्ण
अपरिचित ही रहा···
शांति के भ्रम में
बढ़ती गई विक्षिप्तता···
जीने के प्रयास में—
जीवन का तथ्य खो गया
उलझा रहा

सुलझा नहीं
हटती नहीं झाड़ियां
देखा—
न झाड़ियां थीं, न कांटे
यद्यपि थी
क्या···?
वही
शांति की भ्रांति···!

नीरसता

सरसता के अभाव में
अशांत-विकृत जीवन
कोसता था, स्वयं को
मात्र···
एक बूंद—
रस से भी वंचित रहेगा
क्या अभागे···?
घोषित करते
प्रेरणापूर्ण तीक्ष्ण स्वर ने
चौंका दिया मुझको···!
प्रतिध्वनित वातावरण

कह रहा था—
डर गये ?
—नीरसता से
भयभीत न हों—
देखें, उसे देखें—
देखें, साक्षी बनें—
जीवन की पूर्णता में
जीने का मार्ग
मात्र···
वही तो है ···!

—स्वामी अमृत परमहंस
नई देहली

An Interview

FRAGRANCE OF LIFE

(In the last interview of Ma Veet-Sandeh, devotees realise the depthness of her life with the impact of Bhagwan Shri's ideas. Now, here we are putting another Interview, taken by Shri 'Akul' Rajendra, of Swami Mangal Tirtha (DI Pietro Mario) of Italy who has expressed the inner ideas of his life, under the same context.)

●

Q. : How did you happen to come India ?

A. : I had been thinking of coming to India since I left school, four years ago. I don't know why India and not another place, probably I was influenced by the 'Hippy-Cult' that had made a new Mecca of places as Goa, Benaras, Kathmandu. Anyway, everytime I was going to leave I found something that kept me in Europe. Till one day, about six months ago, I realized that I had nothing more to do there, so I picked-up my sleeping-bag and I started the long road to India.

Q. : Why you have become interested in Religion and Yoga ? Generally people intend to seek pleasure in life with the worldly affairs by means of wealth, sex, power and social position and so what are your views in this perspective ?

A. : In the West you would find so many people between the age of 15 and 30 interested in Yoga and Religion. Wealth, power and social position were the aim of our fathers. They made even a war for this and now we see that as individuals they are a failure. It is because they are still running after wealth and power that the world is going towards the ecological destruction. It is natural that many kids try to drop out from the "Establishment", everything is so ugly. Esoteric Religion and Yoga in many cases become a way to drop out.

This doesn't mean that we become Hindus or Buddhist, no ! we have enough with Christian Religion. All "State-Religion" are nothing but a political instrument to keep the power, so they are supported by ignorance, superstition and fear. What we want is not to become a part of a particular religious sect, but to learn to live religiously.

Q. : How did you come in contact with Bhagwan Shri Rajneesh ?

A. : I came in contact with Bhagwan Shri Rajneesh because I met somebody who was medium between Bhagwan Shri and me. A great medium who knows me better than I and who realized at once what I needed.

Q. : What influenced you much in Bhagwan Shri's Philosophy of Life ?

A. : It is not Bhagwan Shri's Philosophy of Life that influenced me, it is his kind of 'SADHNA', his method. The Philosophy of Life comes after, as

a consequence; but I would'nt call it "Philosophy" neither "Ideology" because both imply intellectual understanding. They sound very boring words. I see it as a "way" of life, something to be experienced.

Q. : In short, would you kindly recount how do you feel after taking 'SANNYAS' ? Do you find any change in your life ?

A. : Yeah ! there is a change : many things that before seemed to be interesting or funny or important, now they look quite shallow. How do I feel !! sometimes high, sometimes confused. I cannot say exactly. You know, everything happend suddenly ... ... I didn't expect anything like that. Now I am under 'treatment' —a loving treatment.

Q. : What are your views about the 'SANNYAS' without ronouncing the material life,i.e.'SANNYAS' within the social environments ?

A. : Renunciation of material life is a part of the old 'SANNYAS-TRADITION' and it has been so long emphasized. Really I don't see this renunciation as a great virtue. In India "Material life" has never been very attractive for an average man, he has to strive everyday for the maintenance of his family--life is not so easy over here. For many people to become a 'Sannyasi', it was and still is a convenient solution—a GOOD DEAL.

For example to renounce a family, in many cases, means only to be free from a big burden, free from a lot of responsibilities. Very often the word renunciation is out of place : it is so easy to renounce

when there is nothing pleasent to keep with. I think that a sannyasi, who lives in the world, becomes much more aware of it and it is this awareness that leads to detachment.

Q. : Would you kindly say that how for Bhagwan Shri's Philosophy of Life and Yoga would be useful to the humanity at-large— particularly in America, Europe and other western countries ?

A. : Let us forget the "Philosophy of life". It is much more interesting to look at the practical instrument—Bhagwan Shri's Yoga.

We live in a mass-civilization, so if we think about Yoga what can be letter of a "Mass-Sadhna", a mass meditation in which hundreds of people turn on to-gether ? This is also a very powerful therapeutic treatment. There could be so many applications. If for an example, the workers of a factory could start the day doing meditation with this method (deep and violent breathing) with their bosses, all to-gether freaking-out in deep breathing and repeating vigorously "hoo" ... "hoo" ... "hoo" .. In that factory there would be such a revolution as no trade-union, no political party could ever conceive.

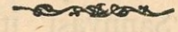

"फूल हजार हों, लेकिन सौंदर्य एक है। हजार ढंग के दिए हों, लेकिन ज्योति एक है। इस आधारभूत सत्य के दर्शन से सारे वाह्य भेद गिर जाते हैं।"

—भगवान श्री रजनीश

एक तरल, गैर-गंभीर व आनंदपूर्ण संन्यास का सूत्रपात

संकलन—

स्वामी योग चिन्मय

साधना शिविर, मनाली (हिमालय) में रात्रि दिनांक २८ सितम्बर, १९७० को भगवान श्री रजनीश द्वारा नव-संन्यास (Neo-Sannyas) पर दिया गया प्रवचन। "नव-संन्यास" पर भगवान श्री के प्रवचनों का एक संकलन १८० पृष्ठ के पुस्तक के रूप में शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

—सम्पादक

संन्यास त्याग नहीं--आनन्द है, उपलब्धि है

संन्यास मेरे लिए त्याग नहीं, आनन्द है। संन्यास निषेध भी नहीं है, उपलब्धि है। लेकिन आज तक पृथ्वी पर संन्यास को निषेधात्मक अर्थों में ही देखा गया है—त्याग के अर्थों में, छोड़ने के अर्थों में—पाने के अर्थ में नहीं। मैं संन्यास को देखता हूं पाने के अर्थ में। निश्चित ही जब कोई हीरे जवाहरात पा लेता है तो कंकड़ पत्थरों को छोड़ देता है। लेकिन कंकड़ पत्थरों को छोड़ने का अर्थ इतना ही है कि हीरे जवाहरातों के लिए जगह बनानी पड़ती है। कंकड़ पत्थरों का त्याग नहीं किया जाता। त्याग तो हम उसी बात का करते हैं जिसका बहुत मूल्य मालूम होता है। कंकड़ पत्थर तो ऐसे छोड़े जाते हैं जैसे घर से कचरा फेंक दिया जाता है। घर से फेंके हुए कचरे का हम हिसाब नहीं रखते कि हमने कितना कचरा त्याग दिया।

संन्यास का अर्थ है--जीवन का फैलाव, विस्तार, गहराई

संन्यास अब तक लेखा-जोखा रखता रहा है उस सबका जो छोड़ा जाता रहा है। मैं संन्यास को देखता हूं उस भाषा में, उस लेखे-जोखे में, जो पाया जाता है। निश्चित ही इसमें बुनियादी फर्क पड़ेगा। यदि संन्यास आनंद है, यदि संन्यास उपलब्धि है, यदि संन्यास पाना है, विधायक है, पोजीटिव है तो संन्यास का अर्थ विराग नहीं हो सकता। तो संन्यास का अर्थ उदासी नहीं हो सकता। तो संन्यास का अर्थ जीवन का विरोध नहीं हो सकता। तब तो **संन्यास का अर्थ होगा जीवन में अहो भाव।** तब तो संन्यास का अर्थ होगा, उदासी नहीं, **प्रफुल्लता।** तब तो संन्यास का अर्थ होगा **जीवन का फैलाव, विस्तार, गहराई।** सिकुड़ाव नहीं।

अभी तक जिसे हम संन्यासी कहते हैं वह अपने को सिकोड़ता है, सबसे तोड़ता है, सब तरफ से अपने को बन्द करता है। **मैं उसे संन्यासी कहता हूं जो सब से अपने को जोड़े, जो अपने को बन्द ही न करे, खुला छोड़ दे।**

संन्यास है परम स्वतन्त्रता में जीने का साहस

निश्चित ही इसके और भी अर्थ होंगे। जो संन्यास सिकोड़ने वाला है वह संन्यास बन्धन बन जायगा, वह संन्यास कारागृह बन जायगा, वह संन्यास कारागृह बन जायगा, वह संन्यास स्वतन्त्रता नहीं हो सकता। और जो संन्यास स्वतंत्र नहीं है वह संन्यास कैसे हो सकता है? **संन्यास की आत्मा तो परम स्वतन्त्रता है।** इसलिए मेरे लिए संन्यास की कोई मर्यादा नहीं, कोई बन्धन नहीं। मेरे लिए संन्यास का कोई नियम नहीं, कोई अनुशासन नहीं। मेरे लिए

संन्यास की कोई डिसिप्लिन नहीं है, कोई अनुशासन नहीं है। मेरे लिए संन्यास व्यक्ति की परम विवेक में परम स्वतंत्रता की उद्भावना है।

उस व्यक्ति को मैं संन्यासी कहता हूं जो परम स्वतन्त्रता में जीने का साहस करता है। नहीं कोई बन्धन ओढ़ता, नहीं कोई व्यवस्था ओढ़ता, नहीं कोई अनुशासन ओढ़ता। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि उच्छृंखल हो जाता है। इसका यह मतलब नहीं कि वह स्वच्छन्द हो जाता। असलियत तो यह है कि जो आदमी परतन्त्र है वही उच्छृंखल हो सकता है। और जो आदमी परतन्त्र है, बन्धन में बंधा है वही स्वच्छन्द हो सकता है। जो स्वतन्त्र है वह तो कभी स्वच्छन्द होता ही नहीं। उसके स्वच्छन्द होने का उपाय नहीं।

जीवन की गहनतम संपदा—संन्यास

अतीत के संन्यास से मैं भविष्य के संन्यास को भी तोड़ता हूं। और मैं समझता हूं कि अतीत के संन्यास की जो आज तक व्यवस्था थी वह मरण-शैय्या पर पड़ी है। मर ही गयी है। उसे हम ढो रहे हैं, वह भविष्य में बच नहीं सकती। लेकिन **संन्यास ऐसा फूल है जो खो नहीं जाना चाहिए।** वह ऐसी **अद्भुत उपलब्धि है जो बिदा नहीं हो जाना चाहिए। वह बहुत अनूठा फूल है जो कभी-कभी खिलता रहा है।** ऐसा भी हो सकता है कि हम उसे भूल ही जायं, खो ही दें। पुरानी व्यवस्था में बंधा हुआ वह मर सकता है। इसलिए **संन्यास को नये अर्थ, नये उद्भाव देने जरूरी हो गये हैं।** संन्यास तो बचना ही चाहिए। **वह तो जीवन की गहरी से गहरी सम्पदा है।** लेकिन अब वह कैसे बचायी जा सकेगी। उसे बचाये जाने के लिए कुछ मेरे खयाल मैं आपको कहता हूं।

पहली बात तो मैं आपसे यह कहता हूं कि बहुत दिन हमने संन्यासी को संसार से तोड़कर देख लिया। इससे दुहरे नुकसान हुए। संन्यासी संसार से टूटता है तो दरिद्र हो जाता है, बहुत गहरे अर्थों में दरिद्र हो जाता है। क्योंकि जीवन के अनुभव की सारी संपदा संसार में है। जीवन के सुख-दुख का, जीवन के संघर्ष, जीवन की सारी गहनताओं का, जीवन रसों का, सारा अनुभव तो संसार से है और जब हम किसी व्यक्ति को संसार से तोड़ देते हैं तो वह 'हाट हाउस प्लान्ट' हो जाता है। खुले आकाश के नीचे खिलने वाला फूल नहीं रह जाता। वह बन्द कमरे में, कृत्रिम हवाओं में, कृत्रिम गर्मी में खिलने वाला फूल हो जाता है—कांच की दीवारों में बन्द। उसे मकान के बाहर लायें तो वह मुर्झा जायेगा, मर जायेगा।

संसार से टूट जाने से संन्यासी की आंतरिक समृद्धि में कमी

संन्यासी अब तक 'हाट हाउस प्लांट' हो गया है। लेकिन संन्यास भी

कहीं बन्द कमरों में खिल सकता है ? उसके लिए खुला आकाश चाहिए, रात का अंधेरा चाहिए, दिन का उजाला चाहिए, चांद तारे चाहिए, पक्षी चाहिए, खतरे चाहिए, वह सब चाहिए। **संसार से तोड़कर हमने संन्यासी को भारी नुकसान पहुंचाया है। संन्यासी की आंतरिक समृद्धि क्षीण हो गई है।** यह बड़े मजे की बात है कि साधारणत: जिन्हें हम अच्छे आदमी कहते हैं उनकी जिन्दगी बहुत समृद्ध नहीं होती, उनकी जिन्दगी में बहुत अनुभवों का भंडार नहीं होता। इसलिए उपन्यासकार कहते हैं कि अच्छे आदमी की जिन्दगी पर कोई कहानी नहीं लिखी जा सकती। कहानी लिखनी हो तो बुरे आदमी को पात्र बनाना पड़ता है। एक बुरे आदमी की कहानी होती है। अगर हम बता सकें कि एक आदमी जन्म से मरने तक बिल्कुल अच्छा है तो इतनी ही कहानी काफी है। और कुछ बताने को नहीं रह जाता। **संन्यासी को संसार से तोड़कर हम अनुभव से तोड़ देते हैं। अनुभव से तोड़कर हम उसे एक तरह की सुरक्षा तो दे देते हैं लेकिन एक तरह की दरिद्रता भी दे देते हैं।**

संन्यासी संसार से जुड़े, तो ही मंगल

मैं संन्यासी को संसार से जोड़ना चाहता हूं। मैं ऐसे संन्यासी देखना चाहता हूं जो दूकान पर भी बैठे हों, दफ्तर में काम भी कर रहे हों, खेत पर मेहनत भी कर रहे हों, **जो जिन्दगी की पूरी सघनता में खड़े हों।** हार नहीं गये हों, भगोड़े न हों, एस्केपिस्ट न हों। पलायन न किया हो। जिन्दगी के पूरे सघन बाजार में खड़े हों, भीड़ में, शोरगुल में खड़े हों **और फिर भी संन्यासी हों।** तब उनके संन्यास का क्या मतलब होगा ? अगर एक स्त्री संन्यासिनी होती है और पत्नी है तो अब तक मतलब होता था कि वह भाग जाये जिंदगी से—छोड़कर बच्चों को, पति को। अगर पति है तो छोड़ जायेगा घर को। घर छोड़कर, भाग जायेगा।

जीवन की सघनता में ही संन्यास का फूल खिले

मेरे लिए ऐसे संन्यास का कोई अर्थ नहीं है। मैं तो मानता हूं कि अगर एक पति संन्यासी होता है तो जहां है वहीं हो, भागे नहीं। संन्यास उसके जीवन में वहीं खिले। लेकिन तब क्या करेगा वह ? भागने में तो रास्ता दिखता था कि भाग गये तो बच गये। अब क्या करेगा ? अब उसे करने को क्या होगा ? वह पति भी होगा, बाप भी होगा, दुकानदार भी होगा नौकर भी होगा, मालिक भी होगा, हजार संबंधों में होगा। जिन्दगी का मतलब ही अन्तर्संबंधों का जाल है। वह यहां क्या करेगा ? भाग जाता था तो बड़ी सहूलियत थी क्योंकि वह दुनिया ही हट गई जहां कुछ करना पड़ता था। वह

बैठ जाता था एक कोने में—जंगल में, एक गुफा में। सूखता था वहां, सिकुड़ता था वहां। यहां क्या करेगा ? यहां संन्यास का क्या अर्थ होगा ?

जीवन की सघनता में ही अकर्ता, अभोक्ता, साक्षी व अभिनेता हो जाना

एक अभिनेता मेरे पास आया था। नया-नया अभिनेता है। अभी-अभी फिल्मों में आया है। वह मुझसे पूछने आया था कि मुझे भी कोई सूत्र मेरी डायरी पर लिख दें, जो मेरे काम आ जाय। तो उसे मैंने लिखा कि **अभिनय ऐसे करो जैसे वह जीवन हो। और जियो ऐसे जैसे वह अभिनय हो।** संन्यासी का मेरे लिए यही अर्थ है। जीवन की सघनता में खड़े होकर अगर कोई संन्यास के फूल को खिलाना चाहता है तो एक ही अर्थ हो सकता है कि वह कर्ता न रह जाय। भोक्ता न रह जाय, अभिनेता हो जाय। साक्षी हो जाय, देखे, करे, लेकिन कहीं भी बहुत गहरे में बंधे न। गुजरे नदी से, लेकिन उसके पांव को पानी न छुए। नदी से गुजरना तो मुश्किल है कि पांव को पानी न छुए, लेकिन संसार से ऐसे गुजरना संभव है कि संसार न छुए।

अभिनय के भाव से जीवन में कुशलता व सहजता

अभिनय को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। और आश्चर्य तो यह है कि जितना अभिनय हो जाय जीवन उतना कुशल हो जाता है, उतना सहज हो जाता है, उतना चिन्तामुक्त हो जाता है। कोई मां, अगर मां होने में कर्ता न बन जाय, साक्षी रह सके और जान सके इतनी छोटी-सी बात कि जिस बच्चे को वह पाल रही है वह बच्चा उससे आया तो जरूर है, लेकिन उसका ही नहीं है। उससे पैदा तो हुआ है लेकिन उसी ने पैदा नहीं किया है। वह उसके लिए द्वार से ज्यादा नहीं है और जहां से वह आया है और जिससे वह आया है और जिसके द्वारा वह जियेगा, और जिसमें वह लौट जायेगा, उसका ही है। तो मां को कर्त्ता होने की अब जरूरत नहीं रह गई। अब वह साक्षी हो सकती है। अब वह मां होने का अभिनय कर सकती है।

सारा बोझ कर्ता होने का बोझ है

कभी एक छोटा-सा प्रयोग करके देखें चौबीस घण्टे के लिए। तय कर लें कि चौबीस घण्टे अभिनय करूंगा। जब मुझे कोई गाली देगा तो मैं क्रोध न करूंगा, क्रोध का अभिनय करूंगा। और जब कोई मेरी प्रशंसा करेगा तो मैं प्रसन्न न होऊंगा, प्रसन्न होने का अभिनय करूंगा। एक चौबीस घंटे का प्रयोग आपकी जिन्दगी में नये दरवाजे खोल देगा। आप हैरान हो जायेंगे कि

मैं नाहक परेशान हो रहा था। जो काम अभिनय से ही हो सकता था, उसे मैं नाहक कर्ता बन कर दुख झेल रहा था। **और जब सांझ आप दिन भर के अभिनय के बाद सोयेंगे तो तत्काल गहरी नींद में चले जायेंगे।** क्योंकि जो कर्ता नहीं रहा है उसकी कोई चिन्ता नहीं है, उसका कोई तनाव नहीं है, उसका कोई बोझ नहीं है। सारा बोझ कर्ता होने का बोझ है।

जो जहां है वहीं संन्यासी की तरह जीने लगे

संन्यास को मैं घर-घर पहुंचा देना चाहता हूं तो ही संन्यास बचेगा। लाखों संन्यासी चाहिए दो-चार संन्यासी से काम नहीं होगा। और जैसा मैं कह रहा हूं, उसी आधार पर लाखों संन्यासी हो सकते हैं। संसार से तोड़कर आप ज्यादा संन्यासी नहीं जगत में ला सकते, क्योंकि कौन उनके लिए काम करेगा, कौन उनके लिए भोजन जुटायेगा, कौन उनके लिए कपड़े जुटायेगा ? एक छोटी-सी दिखाऊ संख्या पाली-पोसी जा सकती है। लेकिन बड़े विराट पैमाने पर संन्यास संसार में नहीं आ सकता। सिर्फ दो-चार हजार संन्यासी एक मुल्क झेल सकता है। ये संन्यासी भी दीन हो जाते हैं, ये संन्यासी भी निर्भर हो जाते हैं, ये संन्यासी भी परवश हो जाते हैं और इनका विराट, व्यापक प्रभाव नहीं हो सकता। **अगर जगत में बहुत व्यापक प्रभाव चाहिए संन्यास का,** जो कि जरूरी है, उपयोगी है, अर्थपूर्ण, आनन्दपूर्ण है तो हमें धीरे-धीरे ऐसे संन्यास को जगह देनी पड़ेगी जिसमें से तोड़कर भागना अनिवार्यता न हो, जिसमें जो जहां है **वह वहीं संन्यासी हो सके।** वहीं वह अभिनय है और वहीं वह साक्षी हो जाय, जो हो रहा है उसका साक्षी हो जाय।

जीवन को उत्सव बनाने के लिए एक जगत व्यापी संन्यास आन्दोलन

तो एक तो संन्यास को घर से, दुकान से, बाजार से जोड़ने का मेरा खयाल है। अद्‌भुत और मजेदार हो सकेगी वह दुनिया—अगर हम बना सकें—जहां दूकानदार संन्यासी हो। स्वभावतः वैसा दुकानदार बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पायेगा। जब अभिनय ही कोई कर रहा हो तो बेईमान होने में बड़ी कठिनाई पायेगा। **संन्यासी अगर दफ्तर में क्लर्क हो, चपरासी हो, डाक्टर हो, वकील हो तो हम इस दुनिया को बिल्कुल बदल डाल सकते हैं।**

तो एक तो संसार को तोड़कर संन्यासी दीन हो जाता है और संसार का भारी नुकसान होता है, संसार भी दीन हो जाता है। क्योंकि उसके बीच जो श्रेष्ठतम फूल खिल सकते थे वह हट जाते हैं, वह बगिया के बाहर हो जाते हैं। और बगिया उदास हो जाती है। इसलिए संन्यास का एक जगत-

व्यापी आंदोलन जरूरी है। जिसमें हम धीरे-धीरे घर में, द्वार में, बाजार में, दुकान में संन्यासी को जन्म दे सकें जो मां होगी, पति होगा, पत्नी होगी, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। वह जो भी होगा वही होगा। सिर्फ उसके देखने की दृष्टि बदल जायगी। उसके लिए जिंदगी अभिनय और लीला हो जायेगी, काम नहीं रह जायेगा। उसके लिए जिंदगी एक उत्सव हो जायेगी, और उत्सव होते ही सब बदल जाता है।

सावधिक संन्यास की नव धारणा

दूसरी एक मेरी दृष्टि है, वह आपको कहूं। वह मेरी दृष्टि है पीरियाडिकल रिनन्सिएशन की, सावधिक संन्यास की। ऐसा मैं नहीं मानता हूं कि कोई आदमी जिन्दगी भर संन्यासी होने की कसम ले। असल में भविष्य के लिए कोई भी कसम खतरनाक है। क्योंकि भविष्य के हम कभी भी नियन्ता नहीं हो सकते। वह भ्रम है। भविष्य को आने दें, वह जो लायेगा हम देखेंगे। जो साक्षी है वह भविष्य के लिए निर्णय नहीं कर सकता। निर्णय सिर्फ कर्त्ता कर सकता है। जिसको खयाल है कि मैं करने वाला हूं वह कह सकता है कि मैं जिन्दगी भर संन्यासी रहूंगा। लेकिन सच में जो साक्षी है वह कहेगा, कल का तो मुझे कुछ पता नहीं, कल जो होगा होगा। कल जो होगा उसे देखूंगा और जो होगा, होगा। कल के लिए कोई निर्णय नहीं ले सकता।

संन्यास से ससम्मान वापस लौटने की सुविधा

इसलिए संन्यास की एक और कठिनाई अतीत में हुई वह थी जीवन भर के संन्यास की—आजीवन संन्यास की। एक आदमी किसी भाव दशा में संन्यासी हो जाय और कल किसी भाव दशा में जीवन में वापस लौटना चाहे, तो हमने लौटने का द्वार नहीं छोड़ा है खुला। संन्यास में तो हमने एंट्रेंस (प्रवेश द्वार) तो रखा है, एक्जिट (बाहर के लिए द्वार) नहीं है। उसमें भीतर आ सकते हैं, बाहर नहीं जा सकते। और ऐसा स्वर्ग भी नर्क हो जाता है जिसमें बाहर लौटने का दरवाजा न हो—परतन्त्रता बन जाता है, कारागृह हो जाता है। आप कहेंगे, नहीं, कोई संन्यासी लौटना चाहे तो हम क्या करेंगे, लौट सकता है। लेकिन आप उसकी निन्दा करते हैं, अपमान करते हैं। निंदा (कण्डमनेशन) है उसके पीछे।

सामाजिक सम्मान के पीछे छिपा हुआ असम्मान

और इसीलिए हमने एक तरकीब बना रखी है कि जब कोई संन्यास लेता है तो उसका भारी शोर-गुल मचाते हैं। जब कोई संन्यास लेता है तो बहुत बैण्ड बाजा बजाते हैं। जब कोई संन्यास लेता है तो बहुत फूल-मालाएं

पहनाकर बड़ी प्रशंसा, बड़ा सम्मान, बड़ा आदर देते हैं। जैसे कोई बहुत बड़ी घटना घट रही हो, ऐसा हम उपद्रव करते हैं। पर इस उपद्रव का दूसरा हिस्सा है, वह उस संन्यासी को पता नहीं कि अगर वह कल लौटा तो जैसे फूल-मालाएं फेंकी गईं वैसे पत्थर और जूते भी फेंके जायेंगे। और वे ही लोग होंगे फेंकने वाले, कोई दूसरा आदमी नहीं होगा। असल में इन लोगों ने फूल-मालायें पहनाकर उससे कहा कि अब सावधान, अब लौटना मत। अब जितना आदर दिया है उतना ही अनादर प्रतीक्षा करेगा। यह बड़ी खतरनाक बात है। इसके कारण न मालूम कितने लोग जो संन्यास का आनन्द ले सकते हैं, वह नहीं ले पाते। वह कभी निर्णय नहीं कर पाते कि 'जीवन भर के लिए', जीवन भर का निर्णय बड़ी मंहगी बात है, बड़ी मुश्किल बात है। फिर हकदार भी हम नहीं हैं जीवन भर के निर्णय के लिए।

संन्यास है--एक व्यक्तिगत, निजी संकल्प

तो मेरी दृष्टि है कि संन्यास सदा ही सावधिक है। आप कभी भी वापस लौट सकते हैं। कौन बाधा डालने वाला है? संन्यास आपने लिया था, संन्यास आप छोड़ दें। आपके अतिरिक्त इसमें कोई और निर्णायक नहीं है। आप ही निर्णायक हैं। आपका ही निर्णय है। इसमें दूसरे की न कोई स्वीकृति है, न दूसरे का कोई सम्बन्ध है। **संन्यास निजता है, मेरा निर्णय है।** मैं आज लेता हूं कल वापस लौटता हूं। **न तो लेते वक्त आपकी अपेक्षा है कि सम्मान करें, न छोड़ते वक्त आपसे अपेक्षा है कि आप इसके लिए निन्दा करें।** आपका कोई सम्बन्ध नहीं है।

संन्यास को गैर-गंभीर घटना बनाना

संन्यास को हमने बड़ा गंभीर मामला बनाया हुआ था, इसलिए वह सिर्फ रुग्ण और गंभीर लोग ही ले पाते हैं। **संन्यास को बहुत गैर-गम्भीर खेल की घटना बनाना जरूरी है।** आपकी मौज है, संन्यास ले लिया है। आपकी मौज है, आप कल लौट जा सकते हैं। नहीं मौज है, नहीं लौटते हैं। जीवनभर रह जाते हैं। वह आपकी मौज है। इससे किसी का कोई लेना-देना नहीं है। फिर इसके साथ, यह भी मेरा खयाल है कि अगर संन्यास की ऐसी दृष्टि फैलायी जा सके तो कोई भी आदमी जो वर्ष में एकाध दो महीने के लिए संन्यास ले सकता है वह एकाध दो महीने के लिए ले लेगा। जरूरी क्या है है कि वह बारह महीने के लिए ले। वह दो महीने के लिए संन्यासी हो जाय, दो महीने संन्यास की जिंदगी को जिये, दो महीने के बाद वापस लौट जाय। यह बड़ी अद्भुत बात होगी।

अहंकार विसर्जन की कीमिया----संन्यास : एक बोध कथा

एक फकीर हुआ, उस फकीर के पास एक सम्राट गया। सूफी फकीर था। उस सम्राट ने कहा, मुझे भी परमात्मा से मिला दो। मैं भी बड़ा प्यासा हूं। उस फकीर ने कहा, तुम एक काम करो। कल सुबह आ जाओ। सम्राट कल सुबह आया। उस फकीर ने कहा, तुम सात दिन यहीं रुको। वह भिक्षा का पात्र हाथ में लो और रोज गांव में सात दिन तक भीख मांगकर लौट आना, यहां भोजन कर लेना, यहीं विश्राम कर लेना। सात दिन के बाद परमात्मा के सम्बन्ध में बात करेंगे।

सम्राट बहुत मुश्किल में पड़ा। उसकी ही राजधानी थी। उसकी अपनी ही राजधानी में भिक्षा का पात्र लेकर भीख मांगना! उसने कहा कि अगर किसी दूसरे गांव में चला जाऊं तो! उस फकीर ने कहा नहीं, गांव तो यही रहेगा। अगर सात दिन भीख न मांग सको तो वापस लौट जाओ। फिर परमात्मा की बात मुझसे मत करना। सम्राट झिझका जरूर, लेकिन रुका। दूसरे दिन भीख मांगने गया बाजार में। सड़कों पर, द्वारों पर खड़े होकर उसने भीख मांगी। सात दिन उसने भीख मांगी।

सात दिन के बाद फकीर ने उसे बुलाया और कहा, अब पूछो। उसने कहा, मुझे कुछ भी नहीं पूछना है। मैं तो सोच भी नहीं सकता था कि सात दिन भिक्षा का पात्र फैलाकर मुझे परमात्मा दिखाई पड़ जायेगा। फकीर ने कहा, क्या हुआ तुम्हें? उसने कहा, कुछ भी नहीं हुआ। **सात दिन भीख मांगने में मेरा अहंकार गल गया, और पिघल गया, और बह गया। मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि जो सम्राट होकर नहीं पा सका वह भिखारी होकर मिल सकता है।** और जिस क्षण विनम्रता (ह्यूमिलिटी) का भीतर जन्म होता है, उसी क्षण द्वार खुल जाते हैं।

संन्यास की संक्षिप्त झलक का जीवन में सम्बल

अब यह अद्‌भुत अनुभव की बात होगी कि कोई आदमी वर्ष में दो महीने के लिए, एक महीने के लिए संन्यासी हो जाय, फिर वापस लौट जाय, अपनी दुनिया में। इस दो महीने में संन्यास की जिंदगी के साथ अनुभव उसकी संपत्ति बन जायेंगे—वह उसके साथ चलने लगेंगे। और अगर एक आदमी चालीस-पचास साल, साठ साल की उम्र तक दस-बीस बार थोड़े-थोड़े दिनों के लिए संन्यासी होता चला जाय तो फिर उसे संन्यासी होने की जरूरत न रह जायगी। वह जहां है वहीं धीरे-धीरे संन्यासी हो जायगा।

ऐसा भी मैं सोचता हूं कि **हर आदमी को मौका मिलना चाहिए कि**

वह कभी संन्यासी हो जाय। और दो-चार बातें, फिर आपको कुछ इस संबंध में पूछना हो तो आप पूछ सकते हैं।

सम्प्रदाय मुक्त संन्यासी का जन्म जरूरी

अब तक जमीन पर जितने संन्यासी रहे वह किसी धर्म के थे। इससे बहुत नुकसान हुआ है। **संन्यासी भी और 'किसी धर्म का' होगा, यह बात ही बेतुकी है। कम से कम संन्यासी तो 'सिर्फ धर्म का' होना चाहिए।** वह न तो जैन हो, न ईसाई हो, न हिन्दू हो। वह तो सिर्फ धर्म का हो। वह तो कम से कम "सर्वं धर्मान् परित्यज्य", वह तो कम से कम सर्व धर्म छोड़कर, **निपट धर्म का हो जाय।** यह बड़े मजे की बात होगी कि हम इस पृथ्वी पर एक ऐसे संन्यास को जन्म दे सकें जो धर्म का संन्यास हो। किसी विशेष संप्रदाय का नहीं। वह संन्यासी मस्जिद में रुक सके, वह मंदिर में भी रुक सके, वह गुरुद्वारा में भी ठहर सके। **उसके लिए कोई पराया न हो, सब अपने हो जायं।**

दीक्षा परमात्मा से----गुरु गवाह व साक्षी मात्र

साथ ही ध्यान रहे, अब तक संन्यास सदा गुरु से बंधा रहा। कोई गुरु दीक्षा देता है। संन्यास कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे कोई दे सके। संन्यास ऐसी चीज है जो लेनी पड़ती है, देता कोई भी नहीं। या कहना चाहिए कि परमात्मा के सिवा और कौन दे सकता है ? अगर मेरे पास कोई आता है और कहता है कि मुझे दीक्षा दे दें, तो मैं कहता हूं कि मैं कैसे दीक्षा दे सकता हूं, मैं सिर्फ गवाह हो सकता हूं, विटनेस हो सकता हूं। **दीक्षा तो परमात्मा से ले लो,** दीक्षा तो परम सत्ता से ले लो, **मैं गवाह भर हो सकता हूं,** एक विटनेस हो सकता हूं कि मैं मौजूद था, मेरे सामने यह घटना घटी। इससे ज्यादा कुछ अर्थ नहीं होता।

गुरु से बंधा हुआ संन्यास सांप्रदायिक हो ही जायेगा। गुरु से बंधा संन्यास मुक्ति नहीं ला सकता, बंधन ले आयेगा।

अल्पकालीन संन्यास, घर में संन्यास, और दीर्घकालीन संन्यास

फिर यह संन्यासी करेगा क्या ? ये संन्यासी तीन प्रकार के हो सकते हैं। एक वे जिन्होंने सावधिक संन्यास लिया है, जो एक अवधि के लिए संन्यास लेकर आये हैं, जो दो महीने, तीन महीने संन्यासी होंगे, साधना करेंगे, एकांत में रह सकते हैं, फिर वापस जिंदगी में लौट जायं। दूसरे वे संन्यासी हो सकते हैं जो जहां हैं, वहां से इंच भर नहीं हटते, क्षण भर के लिए नहीं हटते, वहीं संन्यासी हो जाते हैं। और वहीं अभिनय और साक्षी का जीवन शुरू कर देते हैं। तीसरे, वे भी संन्यासी होंगे जो संन्यास के आनंद में इतने डूब जाते हैं,

कि न तो लौटने का उन्हें सवाल उठता, न ही उनके ऊपर कोई जिम्मेवारी है कि जिसकी वजह से उन्हें किसी के घर में बंधा हुआ रहना पड़े। न उन पर कोई निर्भर है, न उनके यहां वहां हट जाने से कहीं भी कोई पीड़ा और कहीं भी कोई दुख और कहीं भी कोई अड़चन आती है। **ऐसा जो तीसरा वर्ग होगा संन्यासियों का यह तीसरा वर्ग ध्यान में जिये, ध्यान की खबरें ले जाय, ध्यान को लोगों तक पहुंचाये।**

संन्यासी ध्यान के प्रयोगों को पूरी पृथ्वी में फैलाये

मुझे ऐसा लगता है, कि इस समय पृथ्वी पर जितनी ध्यान की जरूरत है उतनी और किसी चीज की नहीं है। और अगर हम पृथ्वी के एक बड़े मनुष्यता के हिस्से को ध्यान में लीन नहीं कर सके तो शायद आदमी ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहेगा। आदमियत ज्यादा दिन बच नहीं सकती। आदमी समाप्त हो सकता है। इतना मानसिक रोग है, इतने पागलपन हैं, इतनी विक्षिप्तता है, इतनी राजनैतिक बीमारियां हैं कि उन सबके बीच आदमी बचेगा इसकी उम्मीद रोज कम होती जाती है। **अगर इस बीच एक बड़े व्यापक पैमाने पर लाखों लोग ध्यान में नहीं डूब जाते तो शायद हम मनुष्य को नहीं बचा सकेंगे** और या हो सकता है, मनुष्य बच भी जाय तो सिर्फ यंत्र की भांति बचे क्योंकि मनुष्यता का जो भी श्रेष्ठ है वह सब खो जायेगा। इसलिए एक ऐसा वर्ग भी चाहिए युवकों का, युवतियों का, जिन पर कोई जिम्मेवारी न हो अभी—या वृद्धों का वर्ग जो जिम्मेवारी के बाहर हो चुके हों, जिनकी जिम्मेवारी समाप्त हो गई हो, जो जिम्मेवारी पूरी कर चुके हों। उन युवकों का जिन्होंने अभी जिम्मेवारी नहीं ली है, उन वृद्धों का जिनकी जिम्मेवारी जा चुकी है—इनका एक वर्ग चाहिए जो विराट पैमाने पर पृथ्वी को ध्यान में डुबाने में संलग्न हो जाय।

वर्तमान युग के लिये ध्यान की एक नई विधि का अविष्कार

जिस ध्यान के प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं वह इतना आसान है, इतना वैज्ञानिक है कि अगर सौ लोग करें तो सत्तर प्रतिशत लोगों को तो होगा ही। सिर्फ शर्त 'करने' की है और किसी पात्रता की कोई अपेक्षा नहीं है। सत्तर प्रतिशत लोगों को तो परिणाम होंगे ही। फिर **जिस ध्यान की मैं बात कर रहा हूं उसके लिए किसी धर्म की कोई पूर्व अपेक्षा नहीं है। किसी शास्त्र की कोई पूर्व अपेक्षा नहीं है, किसी श्रद्धा और किसी विश्वास की पूर्व अपेक्षा नहीं है।** सीधे, जैसे आप हैं, वैसे ही उस ध्यान में आप उतर सकते हैं। सीधा वैज्ञानिक प्रयोग है। आपसे यह भी अपेक्षा नहीं है कि आप श्रद्धा रखकर उतरें, इतनी ही अपेक्षा है कि एक हाईपोथेटिकल (परिकल्पनात्मक)

जैसा एक वैज्ञानिक प्रयोग करता है, यह जानने के लिए कि देखें होता या नहीं इतना ही। प्रयोग का भाव लेकर अगर आप ध्यान में उतरें तो भी हो जायेगा।

पूरी पृथ्वी ध्यान में डूब सके इसकी सम्भावना

और मुझे ऐसा लगता है कि एक चेन रिएक्शन, एक शृंखलाबद्ध ध्यान की प्रक्रिया सारी पृथ्वी पर फैलायी जा सकती है। और अगर एक व्यक्ति ध्यान को सीख ले और तय कर ले कि सात दिन न बीत पायेंगे तब तक वह एक व्यक्ति को कम से कम ध्यान सिखायेगा तो हम दस वर्ष में इस पूरी पृथ्वी को ध्यान में डुबा देंगे। इससे ज्यादा श्रम की जरूरत नहीं है।

मनुष्य के जीवन में जो भी श्रेष्ठ खो गया है वह सब वापस लौट सकता है। और कोई कारण नहीं है कि कृष्ण फिर पैदा क्यों न हों, क्राइस्ट फिर क्यों न दिखायी पड़ें, बुद्ध फिर क्यों न हमारे पास हमारे निकट मौजूद हो जायं—वही बुद्ध नहीं लौटेंगे, वही कृष्ण नहीं लौटेंगे। हमारे भीतर सारी क्षमताएं हैं, वह फिर प्रगट हो सकती हैं। इसलिए मैंने गवाह होने का तय किया है।

एक तरल, गैर-गंभीर संन्यास का सूत्रपात

इन तीन वर्गों में जो मित्र भी जाना चाहेंगे उनके लिए मैं गवाह रहूंगा। उनका गुरू नहीं रहूंगा। संन्यास उनका और परमात्मा के बीच का सम्बन्ध होगा। कोई उत्सव नहीं किया जायेगा संन्यास देने के लिए, नहीं तो फिर लेते वक्त भी उल्टा उत्सव करना पड़ता है।

इसे कोई गम्भीर बात नहीं समझी जायेगी, यह कोई 'सीरियस अफेयर' नहीं है। इसके लिए इतना परेशान और इतना चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। यह बड़ी सहज बात है। एक आदमी सुबह उठता है और उसके मन में आता है कि वह संन्यासी हो जाये, तो हो जाय। कठिनाई इसलिए नहीं है कि 'कमिटमेंट' कोई 'लाइफ लांग' नहीं है। कोई जिंदगी भर की बात नहीं है कि उसने तय कर लिया है तो अब जिंदगी भर उसे संन्यासी रहना है। अगर कल सुबह उसे लगता है कि नहीं, वापस लौटना है तो वह वापस लौट जाय। इसमें किसी दूसरे का कोई लेना देना नहीं है। ये थोड़ी-सी बातें मैंने कहीं। इस संबंध में कुछ भी आपको सवाल हों तो वह थोड़े से सवाल पूछ लें तो उनकी बात हो जायेगी।

प्रश्नकर्ता : गैरिक कपड़े पहनने का क्या मतलब होता है ?

भगवान श्री : कपड़े पहनने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी भी अपने ढंग के कपड़े पहनता है। **कपड़े पहनने से कोई संन्यासी नहीं होता, लेकिन संन्यासी के अपने कपड़े हो सकते हैं। कपड़े बड़ी साधारण चीज हैं, लेकिन एकदम व्यर्थ चीज नहीं हैं।**

अशांत आदमी---चुस्त कपड़े, शांत आदमी---ढीले कपड़े

आप क्या पहनते हैं, इसके बहुत से अर्थ हैं। आप क्यों पहनते हैं, इसके भी बहुत से अर्थ हैं। एक आदमी ढीले-ढाले कपड़े पहनता है। ढीले-ढाले कपड़े पहनने से कुछ फर्क नहीं पड़ता लेकिन एक आदमी ढीले-ढाले कपड़े क्यों चुनता है ? और एक आदमी चुस्त कपड़े क्यों चुनता है ? ये उस आदमी के सूचक होते हैं। अगर आदमी बहुत शान्त है तो चुस्त कपड़े पसन्द नहीं करेगा। चुस्त कपड़ों की पसन्दगी इस बात की खबर देती है कि आदमी झगड़ालू हो सकता है, अशान्त हो सकता है, उपद्रवी हो सकता है, कामुक हो हो सकता है। लड़ने के लिए ढीले कपड़े ठीक नहीं पड़ते। इसलिए सैनिक को हम ढीले कपड़े नहीं पहना सकते; सिर्फ साधू को पहना सकते हैं। सैनिक को चुस्त कपड़े ही पहनना चाहिए। काम चुस्त कपड़े का है। जहां वह जा रहा है वहां कपड़े इतने कसे होना चाहिये कि उसे पूरे वक्त लगता रहे कि वह अपने शरीर के बाहर छलांग लगा सकता है। पूरे वक्त लगता रहे कि वह जब चाहे तब शरीर के बाहर कूद सकता है। कपड़े इतने चुस्त होने चाहिए। ये कपड़े उसे लड़ने में सहयोगी हो जाते हैं। गैरिक वस्त्रों का भी उपयोग है। ऐसा नहीं कि गैरिक वस्त्रों के बिना कोई संन्यासी नहीं हो सकता, लेकिन **गैरिक वस्त्रों का उपयोग है। और जिन्होंने वह खोजे थे उनके पीछे बहुत कारण थे।**

विभिन्न रंगों का अलग-अलग प्रभाव : एक वैज्ञानिक प्रयोग

पहला कारण समझें। हम कभी छोटे-मोटे प्रयोग भी नहीं करते, इसलिए बड़ी कठिनाई होती है। सात रंगों की सात बोतलें ले लें और उनमें एक ही नदी का पानी भर दें। और सातों को सूरज की रोशनी में रख दें और आप बड़े हैरान हो जायंगे। सात रंग के कांच सात रंग के पानी पैदा कर देते हैं। पीले रंग की बोतल का पानी जल्दी सड़ जायगा, वह ताजा नहीं रह सकता। लाल रंग की बोतल का पानी महीने भर तक स्वच्छ रह जायेगा, सड़ेगा नहीं। आप कहेंगे, क्या किया बोतल ने ? कांच का रंग किरणों के आने-जाने में फर्क डाल रहा है। पीले रंग की बोतल पर और तरह की किरणें

भीतर प्रवेश कर रही हैं, लाल रंग की बोतल पर और तरह की किरणें प्रवेश कर रही हैं, नीले रंग की बोतल पर और तरह की किरणें प्रवेश कर रही हैं। वह जो भीतर पानी है, वह उन किरणों को पी रहा है, वह उसका आहार बन रहा है।

गैरिक वस्त्रों के पीछे गहन वैज्ञानिक कारण

जिन लोगों ने संन्यास पर बहुत प्रयोग किये उन्होंने हजारों साल लम्बे प्रयोग के बाद बहुत तरह के कपड़ों में से गैरिक वस्त्र को चुना था। कई अनुभव हैं उसके पीछे। एक तो बहुत अद्‌भुत अनुभव यह है, जो लोग फिजिक्स को थोड़ा समझते हैं, उनके खयाल में होगा कि जिस रंग का कपड़ा होता है, उस रंग की किरण हमसे वापस लौट जाती है। आम तौर से हम उल्टा समझते हैं। आम तौर से हम समझते हैं, कि जो कपड़ा लाल है, वह लाल होगा। असलियत यह नहीं है, असलियत उल्टी है।

सूरज की किरणों में सात रंग छिपे होते हैं, और जब सूरज की किरण किसी चीज पर पड़ती है—अगर आपको लाल कपड़ा दिखाई पड़ रहा है तो उसका मतलब यह है कि सूरज की किरणों के छः रंग तो वह कपड़ा पी गया, केवल लाल रंग को उसने वापस लौटा दिया। आपको वही रंग दिखाई पड़ता है जो चीजें वापस लौटा देती हैं। नीले रंग की चीज का मतलब है कि नीले रंग की किरण वापस लौट गई। उसे उस चीज ने एब्जार्व नहीं किया, उसने पिया नहीं। वह वापस छोड़ दी गई। वह किरण लौटकर आपकी आंख में पड़ती है इसलिए आपको चीज नीली दिखाई पड़ती है। और मजे की बात यह है कि वह चीज नीले रंग को पीती नहीं है। वह उसको छोड़ देती है। जिस रंग का कपड़ा आप पहन रहे हैं, उस रंग की किरण आपके भीतर प्रवेश नहीं करेगी।

गैरिक वस्त्र कामुकता को शांत करते हैं

गैरिक वस्त्र बहुत सोचकर चुने गये। **लाल रंग की किरण मनुष्य के चित्त में बहुत तरह की कामुकताओं को जन्म देती है।** वह बहुत वाइटल है। लाल रंग की जो किरण है, वह शरीर के भीतर प्रवेश करके मनुष्य की कामुकता (सेक्सुअलिटी) को उभारती है। इसलिए गर्म मुल्क के लोग ज्यादा कामुक होते हैं। जितना गर्म मुल्क होगा उतने लोग ज्यादा कामुक होंगे। इसलिए आप हैरान होंगे यह जानकर कि काम-सूत्र के मुकाबले की कोई किताब ठण्डे मुल्कों में पैदा नहीं हुई। 'अरेबियन नाइट' जैसी कोई किताब

ठण्डे मुल्कों में पैदा न हुई। गर्म मुल्क बहुत कामुक होते हैं। सूरज की तपती हुई तेज किरणें हैं वह सब तपते हुए शरीर में प्रवेश कर जाती हैं।

संन्यास पर जो लोग बहुत तरह के प्रयोग कर रहे थे—हजारों दिशाओं में वह उनको यह भी खयाल आया कि **अगर लाल किरण शरीर से वापस लौटाई जा सके तो वह कामुकता को शांत करती है**। इसलिए गैरिक वस्त्र चुना गया। ठेठ लाल भी चुना जा सकता था, लेकिन थोड़ा-सा फर्क किया गया। गैरिक (ऑकर), ठेठ लाल नहीं चुना। उसमें एक बड़ी अद्‌भुत बात है। लाल चुना जा सकता था, बिल्कुल लाल रंग और भी अच्छा होता, वह लाल किरण को बिल्कुल ही वापस कर देता। लेकिन **अगर लाल किरण बिल्कुल वापस हो जाय तो शरीर के स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचना शुरू हो जाता है**। वह थोड़ी-सी तो जानी चाहिए।

और भी एक कारण है कि अगर लाल किरण मेरे कपड़ों से पूरी तरह वापस लौटे तो जिसकी भी आंख पर पड़ती है उसको भी नुकसान पहुंचाती है। अब बड़े मजे की बात है कि संन्यासी ने इसकी भी चिन्ता की कि उसके कपड़े से किसी को नुकसान भी न पहुंच जाय। आप लाल रंग का कपड़ा जरा बैल के सामने कर दें तो आपको पता चलेगा, कि बैल भी कुछ रंगों को समझता है। बैल भी भड़कता है लाल रंग के कपड़े को देखकर। उसकी आंख पर लाल रंग की चोट गहरी पड़ती है।

रंग-मनोविज्ञान की आधुनिक खोजें

आप जानकर हैरान होंगे कि जो लोग 'कलर साइकोलॉजी' पर, रंग के मनस्-शास्त्र पर काम करते हैं, उनको बड़े अद्‌भुत अनुभव हुए। आज तो पश्चिम में रंग पर बहुत काम चलता है। क्योंकि रंग के बहुत उपयोग उनके खयाल में आ गए हैं। अभी एक बहुत बड़े दुकानदार ने, एक सुपर स्टोर के मालिक ने अमरीका में एक रिसर्च (शोध) करवाया कि हम अपनी चीजें जिन डब्बों में रखते हैं उन पर हम किस तरह के रंग लगायें, कि बिक्री पर उसका असर पड़े। बड़ी हैरानी की बात हुई, कि जो स्त्रियां खरीदने आती हैं उस सुपर स्टोर में, उन पर रिसर्च चलती रहती है पूरे वक्त, कि जितनी स्त्रियां वहां आती हैं पूरे वक्त रिकार्ड किया जाता है कि उनकी आंखें सबसे ज्यादा किस रंग के डब्बे को पकड़ती हैं। तो यह पाया गया कि वही डब्बा अगर पीले रंग में पोता जाय तो बीस प्रतिशत बिक्री होती है और वही डब्बा लाल रंग में पोत दिया जाय तो अस्सी प्रतिशत बिक्री होती है। डब्बा वही, चीज वही, नाम वही, सिर्फ रंग डब्बे का बदल दिया जाय। लाल रंग स्त्रियों की

आंख को बहुत जोर से पकड़ लेता है। इसलिए सारी दुनिया में स्त्रियां लाल रंग के कपड़े सबसे ज्यादा पहनती हैं।

लाल रंग न रखने के कारण भी हैं। लाल रंग का थोड़ा-सा शेड हटाया, गैरिक किया। यह जो गैरिक, यह जो 'ग्रॉकर' कलर है इसमें लाल के सारे फायदे है और लाल का कोई भी नुकसान नहीं है। एक तो कामुकता को यह बहुत क्षीण करता है। और दूसरी बात, बहुत-सी बातें हैं, सारी बात तो नहीं कह सकूंगा क्योंकि वह लम्बा मामला है। अगर रंग की सारी बात समझनी हो तो बहुत लम्बी बात है। लेकिन थोड़ी-सी बातें खयाल में ली जा सकती हैं।

गैरिक वस्त्रों से ध्यान में प्रवेश में सुगमता

गैरिक रंग सूर्य के ऊगने का रंग है। जब सुबह सूर्य ऊग रहा होता है, बस फूट रही है पौ, सूरज निकलना शुरू हुआ—उस वक्त का रंग। ध्यान में भी जब प्रवेश होता है तो जो पहले प्रकाश का रंग होता है वह गैरिक है। और जो प्रकाश का अंतिम अनुभव होता है वह नीला है। गैरिक रंग का अनुभव शुरू होता है भीतर प्रकाश में और नीला पर अन्त होता है, नीले रंग पर पूरा हो जाता है।

ध्यान के पहले चरण की सूचना गैरिक रंग में है। और जब संन्यासी ध्यान में प्रवेश करता है तो उसे वह रंग दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। और अगर वह दिन भर भी, खुली आंख में भी उस रंग को बार-बार देख लेता है तब रिमेंबरिंग वापस लौट आती है। और दोनों के बीच एक तालमेल (एसोसिएशन) हो जाता है। एक अन्तर-सम्बन्ध हो जाता है। जब भी वह अपने गैरिक वस्त्र को देखता है तभी उसे ध्यान का स्मरण आता है। दिन में पच्चीसों दफा अकारण उसको ध्यान का स्मरण आता है और वह वापस डूब जाता है।

गैरिक वस्त्रों से ध्यान के संस्कारों का पुष्ट होना

आप बाजार जाते हैं, कोई चीज लानी है खरीदकर, आप कपड़े में गांठ लगा लेते हैं। गांठ से चीज लाने का कोई सम्बन्ध है ? कोई भी तो सम्बन्ध नहीं है। लेकिन बाजार में अचानक गांठ की खयाल आती है और फौरन याद आ जाता है कि फलानी चीज ले आनी है। गांठ से एसोसिएशन (अंतर्संबंध) हो गया। गांठ से एक कण्डीशनिंग हो गयी, एक संस्कार हो गया।

पावलोव ने एक प्रयोग किया। पावलोव एक कुत्ते के सामने रोटी रखता है। साथ में घण्टी बजाता है। रोटी देखकर कुत्ते के मुंह से लार टप—

कती है। फिर पन्द्रह दिन बाद रोटी देना बन्द कर देता है, फिर घण्टी बजाता है। लेकिन घण्टी सुनकर भी कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगती है। क्या हो गया इस कुत्ते को ? घण्टी और रोटी में एक अन्तर्संबंध, एक एसोसिएशन हो गया। एक कण्डीशन रिफलेक्स पैदा हो गयी। अब कुत्ते को घण्टी के बजने से तत्काल रोटी की याद बन जाती है। हम पूरी जिन्दगी इसी तरह जी रहे हैं। हम पूरी जिन्दगी इसी तरह तय कर रहे हैं लेकिन हमने सब तरह के गलत कण्डीशन्स, गलत रिफलेक्सेस पैदा किये हुए हैं।

ध्यान के पहले रंग का जो अनुभव है वह अगर संन्यासी का दिन में पच्चीस-पचास दफे सौ बार याद आ जाय—जब भी वह उठे, जब भी वह बैठे, जब भी वह सोये, जब भी वह स्नान करने जाय, जब भी कपड़े उतारे, जब भी कपड़े निकाले, तो बार-बार उसे ध्यान की सुध (स्मृति) लौट आती है। वह गांठ हो गई उसके पास, जो उसके काम पड़ जाती है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कोई गैरिक वस्त्र पहिने बिना संन्यासी नहीं हो सकता। संन्यास इतनी बड़ी चीज है, कि वस्त्रों से उसे बांधा नहीं जा सकता। लेकिन, **वस्त्र एकदम व्यर्थ नहीं हैं। उनकी अपनी अर्थवत्ता है। इसलिए मैं पसन्द करूंगा कि सारी पृथ्वी पर लाखों लोग गैरिक वस्त्रों में दिखाई पड़ें।**

प्रश्नकर्ता : भगवान श्री, साधक और संन्यासी में क्या फर्क है, और क्या बिना संन्यासी हुए कोई साधक नहीं हो सकता ?

संन्यास साधना का प्रारंभ है

भगवान श्री : संन्यासी हुए बिना कोई साधक नहीं हो सकता। साधक होने का मतलब है—संन्यास की शुरुआत। असल में साधक का मतलब संन्यास को साधने वाला है। संन्यास साधना है, और साधक क्या करेगा ? उसे जगत में धीरे-धीरे समस्त सुखों व दुखों के पार होकर **आनन्द को** उपलब्ध होना है। उसे कर्ता के पार होकर **साक्षी को** उपलब्ध होना है, उसे अहंकार के पार होकर **शून्य को उपलब्ध होना है, उसे पदार्थ के पार होकर परमात्मा को उपलब्ध होना है। इन सबका इकट्ठा नाम संन्यास है।** साधक का मतलब है, संन्यास शुरू हुआ। सिद्ध का मतलब है, संन्यास पूरा हो गया। दोनों के बीच की जो यात्रा है, वह संन्यास की यात्रा है। संन्यास के लिए ही तो साधना है।

तो साधक का अर्थ ही यह है कि वह संन्यास की खोज में निकला है। लेकिन मेरे संन्यास का मतलब खयाल में रखना आप। मेरा संन्यास उपलब्धि का है, पाने का है, रोज विराट, रोज विराट को पाते चले जाने का है।

प्रश्नकर्ता : आपके संन्यासी की दिनचर्या क्या होगी ?

निश्चित दिनचर्या नहीं--प्रज्ञायुक्त सहज जीवन

भगवान श्री : 'मेरे' संन्यासी की नहीं, क्योंकि कोई मेरा संन्यासी कैसे होगा। संन्यासी की दिनचर्या की बात करें। असल में, दिनचर्या जब भी हम बनाते हैं तभी नुकसान पहुंच जाता है। एक जेन फकीर से किसी ने पूछा कि आपकी दिनचर्या क्या है ? उसने कहा, जब मुझे नींद आती है तब मैं सो जाता हूं और जब मेरी नींद खुलती है तब मैं उठ जाता हूं। और जब मुझे भूख लगती है तब मैं खाना खा लेता हूं। और जब मुझे भूख नहीं लगती है, तो मैं खाना बिल्कुल नहीं खाता।

ठीक कही है उसने बात। **संन्यासी का मतलब यह है, कि जो थोप नहीं रहा है कुछ, जीवन को सहजता में ले रहा है।** हम सब बड़े अजीब लोग हैं। जब नींद आती होती है तब हम जागते रहते हैं, जब नींद नहीं आती होती है तब हम करवट बदल कर सोने का मन्त्र पढ़ते हैं। जब भूख नहीं होती है तब खा लेते हैं, जब भूख होती है तब रुके रहते हैं क्योंकि अभी समय नहीं हुआ। हम पूरी जिन्दगी को अस्त-व्यस्त कर देते हैं। और शरीर की जो अपनी एक अन्तर्व्यवस्था है उसको नष्ट कर देते हैं।

संन्यासी की दिनचर्या शरीर की अंतर्प्रज्ञा द्वारा संचालित

संन्यासी का मतलब है कि वह जो 'विसडम आफ द बाडी' है, जो शरीर की अपनी अन्तर्प्रज्ञा है, उसके अनुसार जियेगा। वह सोयेगा, जब उसे नींद आ जाती है। जागेगा, जब नींद खुल जाती है। ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठेगा। जब नींद खुलती है, उसको ब्रह्ममुहूर्त कहेगा। वह कहेगा जब भगवान उठा देता है, तब मैं उसे ब्रह्ममुहूर्त कहता हूं। ऐसा सब सहज होगा, इसलिए मैं कोई चर्या नहीं बता सकता। और फिर जब भी चर्या तय की जाती है तभी कठिनाइयां शुरू होती हैं, क्योंकि तय मैं अपने हिसाब से करूंगा। और मेरा हिसाब आपका हिसाब नहीं हो सकता। अगर मैं कहूं, तीन बजे रात उठना है तो हो सकता है, मुझे तीन बजे रात उठना आनन्दपूर्ण पड़ता हो और आपके लिए बीमारी का कारण हो जाय। हर आदमी के शरीर की अपनी व्यवस्था है, जिसका हमको खयाल नहीं होता।

आमतौर से लोग मुझे कहते हैं कि आज-कल की स्त्रियां बहुत अलाल (आलसी) हो गयी हैं, पति को उठकर चाय बनानी पड़ती है, और पत्नी सोयी रहती है। लेकिन आपको पता नहीं है, यह बिल्कुल उचित है। स्त्रियों

के उठने की जो अन्तर्व्यवस्था है, वह पुरुषों से दो घण्टा पिछड़ी हुई है, पीछे है। अगर पुरुष पांच बजे उठता है तो स्त्री सात बजे उठ सकती है। इस पर बहुत काम हुआ है।

नींद के रहस्यों की वैज्ञानिक खोज

नींद पर जो चलती खोज है सारी दुनिया में, उससे बड़ी हैरानी के अनुभव हुए हैं। वह अनुभव यह है कि चौबीस घण्टे में दो घण्टे के लिए हर आदमी के शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। आपको अक्सर खयाल हुआ होगा कि सुबह चार बजे के करीब सर्दी लगने लगती है। वह सर्दी बढ़ने के कारण नहीं लगती, आपके शरीर का तापमान गिर गया होता है। दो घंटे के लिए चौबीस घंटे में हर आदमी के शरीर का तापमान गिरता है। और वे जो दो घण्टे हैं सबके अलग-अलग हैं। किसी का दो बजे से चार बजे के बीच गिरता है, रात में। किसी का तीन से पांच के बीच गिरता है, किसी का पांच से सात के बीच गिरता है।

वह जो दो घण्टे हैं, वही गहरी नींद के घण्टे हैं, क्योंकि जिस आदमी को वह दो घण्टे नींद के नहीं मिले वह दिन भर परेशान रहेगा। लेकिन वह सबके अलग-अलग हैं। कोई दस हजार लोगों पर अमरीका में पिछले पांच वर्षों में नींद पर प्रयोग किये गये हैं। और यह पाया गया है कि वह समय हर आदमी का अलग है। इसलिये अब कोई निश्चय नहीं किया जा सकता कि आप कब उठें ? आप पर ही छोड़ा जायेगा कि आप उठकर सब तरह से देख लें—कुछ दिन प्रयोग करके और जिसमें आप दिन भर ताजे रहते हों, वही क्षण आपके उठने का है। और जिसमें आप रात भर गहरे सोते हों वही क्षण आपके सोने का है।

समय की लम्बाई तय नहीं की जाती है। कोई आदमी पांच घण्टे में पूरी नींद ले सकता है, कोई सात घण्टे में, किसी को आठ घण्टे भी लग सकते हैं। कोई तीन घण्टे में भी नींद पूरी कर सकता है। लेकिन जो आदमी तीन घण्टे में पूरी कर लेता है वह खतरनाक हो जाता है। वह दूसरों को कहता है, अलाल हो, तामसी हो। पागल हो गये हो ? वह तीन घण्टे में सो लिया इसलिए वह बड़े अहंकार से भर जाता है। वह सोचता है कि हम कोई बड़ा सात्विक कार्य कर रहे हैं। बाकी लोग छः घण्टे सो रहे हैं, तामसी हैं। वह उनकी तरफ निन्दा के भाव से देखना शुरू कर देता है। और अगर उसको किताब वगैरह लिखना आता हो, तब तो बहुत खतरा हो जाता है। वह नियम बना जाता है। वह नियम बना देता है सख्ती से कि तीन बजे रात उठना, नहीं तो

नर्क में जाओगे। तीन बजे आप उठे कि आप नर्क में जाने के पहले नर्क में चले जाएंगे।

स्वानुभवपूर्वक व्यक्तिगत आहार–विहार का निर्धारण

कितना खाना, क्या खाना, क्या पहनना, कैसे पहनना, कैसे सोना, इस सबकी बहुत ही सामान्य चर्चा की जा सकती है, चर्या नहीं बनाई जा सकती। **चर्या तो आपको अपनी सदा तय करनी पड़ती है,** इनडिवीजुअल टु इनडिवीजुअल—एक-एक व्यक्ति को अपनी ही तय करनी पड़ती है। अपनी ही तय करनी चाहिये भी। इतनी तो स्वतन्त्रता कम से कम रखिये। संसारी नहीं रख पाता, संन्यासी तो रख सकता है। संन्यासी को तो रखना ही चाहिए। उसको तो अवश्य ही यह स्वतन्त्रता रखनी चाहिये, कि उसके लिये जो सुखद है, जो शांतिपूर्ण है, जो आनन्दपूर्ण है, वह वैसे जियेगा। **एक ही बात ध्यान में रखने की है कि उसके कारण किसी को दुख, पीड़ा, परेशानी न हो—किसी को भी—** ऐसे जियेगा। इतनी चर्या उसके लिए पर्याप्त होती है। यह विस्तार में मुझे आपसे बात करनी पड़ेगी, क्योंकि सामान्य बात की जा सकती है, कि क्या खाना क्या नहीं खाना, लेकिन सख्त नहीं हुआ जा सकता।

अब हम देखते हैं कि एक आदमी सिगरेट पी रहा है। अब सारी दुनिया उसके खिलाफ है, लेकिन वह पिये चला जा रहा है। डाक्टर उसको समझा रहे हैं, कि तुम बीमार हो जाओगे। वह कहता है, मानता हूं, बिल्कुल सब जंचता है, लेकिन नहीं छूट सकता। मामला क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि सिगरेट उसके लिये कोई बहुत जरूरी हिस्सा पूरा करती हो? करती है। मैक्सिको में इधर एक अन्वेषण कार्य चलता था, तो पाया गया कि जो लोग **सिगरेट पीने में बड़े पागल** हो जाते हैं, **इनके शरीर में निकोटिन की कमी हो गई होती है।** उनको निकोटिन किसी न किसी तरह पूरा करना पड़ता है। वह चाहे सिगरेट से पूरा करें, चाहे चाय से पूरा करें, चाहे काफी से, चाहे कोको से, चाहे तमाखू खायें, इन सब में निकोटिन है। वह कहीं न कहीं से निकोटिन पूरा करेगा। मगर बिचारे बड़े फंस जायेंगे। और अनैतिक हो जायेंगे।

नीति नियम नहीं—शरीर के नियमों की अधिक जानकारी

अब एक आदमी धुआं भीतर ले जाता है, बाहर निकाल रहा है, इसमें कोई अनीति का काम नहीं कर रहा है। कर रहा है, तो ज्यादा से ज्यादा नासमझी का काम कर रहा है; अनीति का नहीं कर रहा है। धुआं भीतर ले जाने और बाहर निकालने में कौन-सी अनीति है? हां दूसरे की

नाक पर न छोड़ता हो तो काफी है। दूसरे से पूछ लेता हो कि आप आज्ञा देते हैं, कि मैं जरा धुआं बाहर-भीतर कर सकूं। यह आदमी धुआं बाहर भीतर करता है, इसमें अनीति किसी के साथ कुछ करता नहीं। एक इनोसेंट नानसेंस, एक निर्दोष बेवकूफी करता है। धुआं भीतर ले जाता है, बाहर ले जाता है। लेकिन हो सकता है कि इसकी उसे जरूरत हो। अच्छा तो यह हो कि यह जाकर समझे-बूझे। लेकिन **शरीर के बाबत हमारी जानकारी बहुत कम है।** इतना चिकित्सा-शास्त्र विकसित हुआ, फिर भी जानकारी बहुत कम है। अभी भी हम शरीर के पूरे रहस्यों को नहीं समझ पाये हैं कि शरीर की क्या मांग है, क्या जरूरत है, क्या मुसीबत है, क्या कठिनाई है। लेकिन शरीर अनजाने रास्ते से हमें पकड़ कर अपनी जरूरत पूरी करवाता है। वह कहता है कि सिगरेट पियो, कहता है तमाखू खाओ। फिर जब आदत पकड़ लेती है, तो उसकी तृप्ति होने लगती है फिर वह छोड़ता नहीं। ऐसा नहीं है कि जो लोग सिगरेट पीते हैं, सभी के भीतर निकोटिन की कमी होगी। दस में से नौ तो दूसरे को देखकर पीते हैं। और जब देखकर पीने लगते हैं तो फिर एक तरह की यांत्रिक आदत और एक तरह की मेकेनिकल हैबिट पकड़नी शुरू हो जाती है। फिर वह पीते चले जाते हैं। फिर न पियें तो मुसीबत होने लगती है।

लेकिन कुछ भी बात तय नहीं की जा सकती ऊपर से, और निश्चित रूप से सबके लिये कोई एक योजना नहीं बनाई जा सकती कि आदमी ऐसा उठे, ऐसा बैठे, ऐसा सोये, ऐसा खाये, ऐसा पिये। हां, कुछ मोटी बातें कही जा सकती हैं।

दिनचर्या के लिये सामान्य जानकारियां

जो भी करे, जागकर करे, जो भी करे, होशपूर्वक करे। जो भी करे, अपने सुख और दूसरे का सुख ध्यान रखकर करे। जो भी करे उससे स्वास्थ्य, शांति और आनन्द बढ़ता हो; जिस दिशा में घटता हो—उस दिशा में न करे। जो भी खाये-पिये, वह बोझ न बन जाता हो, हल्का करता हो, स्वस्थ करता हो, ताजा करता हो। जो भी खाये-पिये, उससे अकारण, अनावश्यक हिंसा न होती हो। अनावश्यक, अकारण किसी को चोट, दुख, पीड़ा न होती हो। जो भी भोजन में ले, उसमें स्वास्थ्य का ध्यान महत्वपूर्ण हो। स्वाद लेने की कला सीखे। स्वाद वस्तुओं पर कम निर्भर रह जाय, भोजन करने की कला पर ज्यादा निर्भर हो जाय, ऐसी मोटी बातें की जा सकती हैं। और **इन मोटी बातों के आधार पर अपने व्यक्तित्व को देखकर निर्णय लेने चाहिए।**

न किसी और तरह की कोई डिसिप्लिन है, न कोई अनुशासन है। प्रत्येक व्यक्ति आत्मनियन्ता है, और संन्यास का तो मतलब ही है कि हम

अपने निर्णय का अधिकार घोषित करते हैं कि अब हम अपने को अपने ही ढंग से निर्धारित करेंगे। आप कहेंगे, इसमें कोई गलती करे? करे, तो गलती का दुख भोगेगा। इसमें आपको परेशान होने की जरूरत नहीं। गलती करे, तो जैसा गलती करता है, उसका दुख पाता है — पायेगा। ठीक करेगा, सुख पायेगा। दूसरे गलती न करें, इसमें दूसरों को बहुत उत्सुकता नहीं लेनी चाहिए, क्योंकि दूसरों की यह उत्सुकता अनैतिक है। आप दूसरों को गलती तक न करने देंगे, तो आप कौन हैं? दूसरों को गलती करनी है, करने दें। उसी सीमा पर उसे रोका जा सकता है, जहां उसकी गलती दूसरे के लिए पीड़ादायी बने, अन्यथा नहीं रोका जा सकता। वह अपनी गलती करता रहे। उसकी गलती अगर दुख लाती है तो उसको ले आयेगी।

संन्यासी का मतलब यह है, कि वह विवेक से जी रहा है, वह जांच रहा है हर समय कि कौन-सी चीज से दुख आता है, कौन-सी चीज से सुख आता है। जिससे सुख आता है उसको वह स्वीकार करेगा, जिससे दुख आता है धीरे-धीरे उसे छोड़ेगा। **वह धीरे-धीरे अपने आनन्द की खोज की यात्रा पर निकला है।** आप उसके लिए परेशान न हों, लेकिन इधर मैं बहुत हैरान होता हूं। यहां संन्यासी जितना चिंतित नहीं होता, उसके आस-पास जो लोग इकट्ठे होते हैं, वे ज्यादा चिन्तित होते हैं कि कोई गल्ती तो नहीं कर रहा।

ये जो सेल्फ अपाइंटेड जज हैं, (स्वनियुक्त निर्णायक) इनको किसने पट्टा लिखकर दिया है, कि तुम इसकी फिक्र करना, कि कोई गलती तो नहीं कर रहा है? कि संन्यासी ठीक वक्त सोया कि नहीं, कि इस ब्रह्ममुहूर्त में उठता है कि नहीं, दिन में तो नहीं सो जाता है। आप कौन हैं, आप क्यों पीछे पड़े हैं किसी के? नहीं, इसके पीछे कारण हैं। हमको बड़ा रस आता है इसमें। ये टार्चर करने की तरकीबें हैं, **ये दूसरे आदमी को सताने के उपाय हैं।** और फिर हम कहते हैं कि हम आदर भी देते हैं तो इसी की वजह से देते हैं कि तुम गलती नहीं करते। तो हम सौदा भी तय कर लेते हैं। आदमी को हम फंसा लेते हैं। उसको आदर चाहिए आपसे। ठीक है, वह आपके नियम मानकर चलता है और या होशियार हुआ तो ऊपर से दिखता है कि नियम मानता है, नीचे से नियम तोड़ता जाता है।

संन्यासी पाखण्डी न बने--साहस से जिये

मैं संन्यासी को पाखण्डी नहीं होने दे सकता हूं। और एक ही रास्ता है कि संन्यासी पाखण्डी होने से बचे और वह कि **हम उसकी फिक्र छोड़ दें, उसे अपनी फिक्र करने दें।** नहीं तो वह पाखण्डी हो ही जायेगा। हमने सब संन्यासियों को पाखण्डी, हिपोक्रेट कर दिया है। लोगों को हमने दिक्कत में

डाल दिया है। अब एक साधुओं का वर्ग है जो स्नान नहीं कर सकता। अब उसके आस-पास के लोग देखते रहते हैं कि स्नान तो नहीं कर लिया। अब उसको गन्दगी में ढकेल रहे हैं और वह गंदगी में ढंका जा रहा है, लेकिन उसको आदर दें रहे हैं, पैर छू रहे हैं बदले में। अब वह सोचता है कि न नहाने की कीमत पर पैर छूना मिल रहा है, चलने दो। लेकिन वह एकांत में मौका देखकर, पानी से कपड़े को गीला करके 'स्पंज वाश' कर लेता है, कुछ थोड़ी-बहुत सफाई कर लेता है। मगर उसको चोरी और गिल्ट (अपराध-भाव) में हम ढकेल रहे हैं, वह नहाने के पीछे उसको हम धक्का दे रहे हैं।

अभी एक सज्जन मेरे पास आये, उन्होंने कहा, फलानी साध्वी आपके पास आती है। हमने सुना है, कि वह टूथपेस्ट करती है। मैंने कहा, तुम पागल हो गये हो? संन्यासिनी टूथपेस्ट करती है कि नहीं करती है—तुम कोई टूथपेस्ट का काम करते हो? तुम्हें इससे क्या मतलब? उन्होंने कहा, हमारे समाज में दातून करने की तो मनाही है। 'तो तुम मत करो', मैंने उनसे कहा। वह मजे से टूथपेस्ट कर रहे हैं। उन्होंने कहा, "संन्यासी न कर पाये" क्योंकि उसका कारण है—वह आदर भी लेते हैं, बदला भी मांगते हैं।

आदर पाने के लिये संन्यासी सामाजिक नियमों में न बंधे

तो मैं अपने संन्यासी को, जिसको मैं संन्यासी समझ रहा हूं, उसको कहूंगा, आदर मत मांगना अन्यथा बन्धन शुरू हो जायेगा—मांगना ही मत। नहीं तो सब तरह के बेईमान और सब तरह के चोर इकट्ठे हैं, वे सब फंसा लेंगे। वह कहेंगे, हम आदर देते हैं, पैर हम छूते हैं, लेकिन हमारी भी शर्तें हैं: इतना-इतना करना। संन्यासी का मतलब यह है कि जो यह कहता है कि हम तुम्हारे समाज, तुम्हारी शर्तों की कोई चिन्ता नहीं करते। हमने अपनी चिन्ता करनी शुरू कर दी, अब आप हमारी फिक्र न करें।

व्यक्ति का विवेक ही उसका पथ-प्रदीप है।

प्रश्नकर्ता: संन्यासी अगर व्यापार करे तो क्या ब्लैक मार्केटिंग (काला बाजारी) भी कर सकता है?

व्यापारी संन्यासी के लिए काला बाजारी ब्लैक मार्केटिंग करना बहुत कठिन

भगवान श्री: संन्यासी दुकान पर बैठकर दूकानदार का अभिनय करेगा, यह तो ठीक। लेकिन वह ब्लैक मार्केटिंग का भी अभिनय कर सकता है। करेगा तो उससे बहुत नुकसान नहीं होगा, क्योंकि वह संन्यासी न होता

तो भी ब्लैक मार्केट करता। उससे कोई नुकसान नहीं होगा किसी का। लेकिन मैं मानता हूं कि जिस आदमी को संन्यास का खयाल आया है और जो हिम्मत जुटाकर, साहस जुटाकर अपने जीवन में एक प्रयोग करने चला है और जो दुकानदार होने का अभिनय कर रहा है, वह ब्लैक मार्केटिंग का अभिनय नहीं कर सकेगा। क्योंकि **ब्लैक मार्केटिंग करने के लिए अभिनय पर्याप्त नहीं है, कर्ता होना जरूरी है।**

जितना बुरा काम करना हो उतना ही कर्ता होना आवश्यक होता चला जाता है। बुरे काम का आंतरिक दंश है, पीड़ा है। उसके लिए 'इनवाल्व' होना जरूरी होता है, उसके लिए 'कमिटेड' होना जरूरी होता है, उसके लिए डूबना जरूरी होता है। **मैं किसी आदमी को अभिनय में छुरा नहीं मार सकता। मुश्किल पड़ेगा,** क्योंकि दूसरे आदमी की जिंदगी दाव पर होगी और तब अभिनय में छुरा मारने का कोई अर्थ नहीं रह जाता।

अभिनय की जो धारणा है, अगर ठीक से खयाल में आए तो पहला तो मैं यह कहता हूं कि अगर वह करेगा ब्लैक मार्केटिंग, तो नुकसान किसी का नहीं हो रहा है, क्योंकि जो संन्यासी होकर ब्लैक मार्केटिंग कर रहा है, वह संन्यासी नहीं होकर कर ही रहा था सदा ही, इसलिए कहीं कोई नुकसान नहीं हो रहा है। उसमें तो हमें चिन्तित होने की जरूरत नहीं है। संभावना यह है— और मेरे लिए बहुत सम्भावना है कि **वह जो संन्यासी होने के खयाल से भरा है, वह ब्लैक मार्केटिंग का अभिनय करने नहीं जायेगा,** नहीं जा सकता है। **संन्यासी होने की जो प्रज्ञा है, संन्यासी होने का जो विवेक है वही बतायेगा कि उसे क्या करना, क्या नहीं करना।** अभिनय वह वहीं करेगा जहां बिल्कुल करणीय है—जो उसका बिल्कुल कर्तव्य है। जिसे छोड़कर भागना पलायन होगा। जिससे हट जाना जिम्मेदारी से बचना होगा। जिससे भाग जाना किसी के लिए दुख और पीड़ा का इन्तजाम बना जाना होगा—वहीं, वहीं वह अभिनय करेगा। अभिनय तो हमेशा ही अत्यन्त करणीय का, अत्यन्त आवश्यक का हो जायेगा। **अनावश्यक का अभिनय करने की जरूरत नहीं रह जायगी,** वे अपने आप कट जायेंगे।

प्रश्नकर्त्ता : आप गेरुआ वस्त्र पहनने को कहते हैं, लेकिन आप स्वयं गैरिक वस्त्र क्यों नहीं पहनते ?

आप खुद गैरिक वस्त्र क्यों नहीं पहनते ?

भगवान श्री : जानकर ही। एक तो, **इसके पहले कि मैं गैरिक वस्त्र पहनता, संन्यास घट गया**--इसके पहले कि मुझे पता चलता कि गैरिक वस्त्र

पहनूंगा तो संन्यास घटेगा, संन्यास पहले ही घट गया। **पीछे पहनने का कोई अर्थ न रहा, कोई कारण न रहा।** दूसरा, मैं गैरिक वस्त्र पहनूं और फिर कहूं कि गैरिक वस्त्र का कोई उपयोग है, तो शायद ये लगे कि मुझे अपने जैसे ही वस्त्र दूसरों को भी पहना देने की आतुरता है। नहीं, **अपनी शकल में किसी को ओढ़ाना नहीं चाहता।** इसलिए जो भी मैं पहनता हूं, जैसे भी मैं उठता-बैठता हूं, जैसे भी मैं जीता हूं, उसको किसी पर ओढ़ा देने का, किसी पर ढांक देने का जरा भी मन नहीं है।

गैरिक वस्त्र पहनकर गैरिक वस्त्र के सम्बन्ध में कुछ कहता, तो शायद लग सकता था कि मैं अपने वस्त्रों की तारीफ करता हूं। लेकिन मैं बिना गैरिक वस्त्र का हूं, इसलिए गैरिक वस्त्रों से मेरा कोई निजी लगाव नहीं है, इतना तो बहुत साफ है। इसलिए अगर गैरिक वस्त्र की कोई तारीफ करता हूं, तो सिवाय वैज्ञानिक कारणों के और कोई कारण नहीं हैं। मैं खुद तो पहनता नहीं हूं, मेरा खुद का तो कोई लगाव नहीं है, मैं तो बिल्कुल बाहर हूं।

प्रश्नकर्त्ता : आपके पहले शंकराचार्य ने भी आनन्द-केन्द्रित संन्यास की धारणा दी थी ?

शंकराचार्य के संन्यास में जगत् के प्रति गहरा निषेध-भाव

भगवान श्री : मैं नहीं मानता कि शंकराचार्य द्वारा प्रतिपादित संन्यास आनन्द-केन्द्रित है, क्योंकि शंकराचार्य का जगत के प्रति बड़ा निषेध का भाव है—निषेध इतना गहरा है कि वह जगत को माया सिद्ध करने की सतत चेष्टा में लगे हुए हैं। यह जगत झूठा है, यह जगत भ्रम है, यह जगत माया है, यह जगत है ही नहीं, इसे सिद्ध करने का उनका आग्रह इतना प्रगाढ़ है कि यह जगत उन्हें चारों तरफ से परेशान कर रहा है, यह भी साफ है। इस जगत का होना उन्हें गड़ रहा है कि उसे इन्कार किए बिना, उसे स्वप्न बनाये बिना वे छुटकारा नहीं पा सकते। शंकराचार्य का निषेध बहुत गहरा है।

आनन्द की बात शंकर करते हैं। लेकिन मेरे और उनके आनन्द में भी बड़ा बुनियादी फर्क है। वे उस आनन्द की बात करते हैं जो माया को छोड़ने से, ब्रह्म-मिलन से उपलब्ध होता है। **मैं उस आनन्द की बात करता हूं जो समस्त को, समग्र को—माया को, ब्रह्म को, संसार को, प्रभु को—सबको स्वीकार करने से उपलब्ध होता है। निषेध मेरे मन में कहीं भी नहीं है। त्याग मेरे मन में कहीं भी नहीं है।** शंकर अगर आनन्द की बात भी करते हैं तो वह संसार के त्याग में ही छिपा है—वह संसार को छोड़ देने में ही छिपा है। मेरे लिए आनन्द इतना विराट है कि संसार भी उसमें समा जाता है, पर—

मात्मा भी उसमें समा जाता है, सब उसमें समा जाता है। आनन्द में मेरे लिए किसी बात का कोई भी निषेध नहीं है।

और आखिरी बात, जब मैंने कहा, 'अपने संन्यासी', तो जीभ के चूक जाने से नहीं कहा। जीभ मेरी अजीब है, चूकती मुश्किल से ही है। पहली दफा जिन मित्र ने कहा था, 'आपके संन्यासी', तो मैंने इंकार किया था कि 'मेरे' मत कहिए। लेकिन प्रयोजन मेरा दूसरा था। प्रयोजन मेरा यह था कि संन्यासी मेरा कैसे हो सकता है। लेकिन जब मैंने दुबारा कहा तो जीभ नहीं चूकी। मैंने कहा, अपने संन्यासी। संन्यासी मेरा नहीं हो सकता, लेकिन मैं तो संन्यासियों का हो सकता हूं?

भविष्य में संन्यास को बचाने की संभावना

और उस संन्यासी की—उस आनन्द के संन्यासी की, जिसकी मैं बात कर रहा हूं, उससे मेरा लगाव है। उससे लगाव की अपेक्षा नहीं है मेरे प्रति। उससे कोई अपेक्षा नहीं है कि वह मेरे प्रति किसी तरह का सम्बन्ध रखे, लेकिन मेरा लगाव है। और मेरा लगाव इसमें है, क्योंकि मैं देखता हूं कि उस तरह के संन्यासी में ही भविष्य में संन्यास के बचने की संभावना है, आशा है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि संन्यास की दीक्षा व्यक्ति और परमात्मा के बीच की सीधी बात है। लेकिन तब प्रश्न उठता है कि दीक्षा में आपको गवाह व साक्षी के रूप में बीच में रखना क्या संन्यास के प्रति अविश्वास न हो जायगा?

व्यक्ति कमजोर है----इसलिए संन्यास में साक्षी जरूरी

भगवान श्री : यह बिल्कुल ठीक कहते हो कि संन्यास दीक्षा तुम्हारे और परमात्मा के बीच की बात है, अगर इतना समझ में आ जाय तो मेरे साक्षी होने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन तुम यहां आये इसलिए हो कि तुम्हारे और परमात्मा के बीच सीधा सम्बन्ध नहीं बनता, नहीं तो तुम इधर किसलिए भटकते, इधर किसलिए परेशान होते। तब तो मैं साक्षी हो जाऊंगा।

प्रश्नकर्त्ता : क्या आपके आस-पास फिर सम्प्रदाय न बन जायेगा।

ग्रंथ, पंथ, चर्च और गुरु के अभाव में सम्प्रदाय बनना असंभव

भगवान श्री : नहीं, संप्रदाय नहीं बनेगा। नहीं बनेगा इसलिए कि संप्रदाय बनाने के लिए कुछ जरूरतें हैं अनिवार्य। एक, गुरु चाहिए, शास्त्र चाहिए, सिद्धांत चाहिए, कोई विशेषण चाहिए। और इतना ही नहीं, इसके

अतिरिक्त, इससे भिन्न, इससे अन्यथा जो है वह पूर्ण रूप से गलत है, और यही पूर्ण रूप से सही है, ऐसा आग्रह भी चाहिए।

तो एक तो मैं उसे संन्यासी कहता हूं, जिसका कोई विशेषण नहीं। बिना विशेषण के सम्प्रदाय बनाना मुश्किल है। बिना विशेषण के सम्प्रदाय बन नहीं सकता। उसे संन्यासी कह रहा हूं जिसका कोई धर्म नहीं। बिना धर्म के सम्प्रदाय कैसे बनाइयेगा ? उसे संन्यासी कह रहा हूं जिसका कोई धर्मग्रन्थ नहीं है, जिसका कोई धर्मगुरु नहीं है, जिसका कोई मन्दिर नहीं है, मस्जिद नहीं है, शिवालय नहीं है, गुरुद्वारा नहीं है।

संप्रदाय बनना मुश्किल है। कोशिश हमें करना चाहिए कि सम्प्रदाय न बने, क्योंकि सम्प्रदाय ने धर्म को जितना नुकसान पहुंचाया है उतना किसी और चीज ने नहीं पहुंचाया है। अधर्म ने नहीं पहुंचाया है इतना नुकसान धर्म को, जितना संप्रदायों ने पहुंचाया है। असल में मिट्टी पत्थर नुकसान नहीं पहुंचाते। असली सिक्के को कभी अगर नुकसान पहुंचता है तो सिर्फ नकली सिक्के से पहुंचता है; नकली पत्थर से नहीं पहुंचता। धर्म के असली सिक्के को कभी भी नुकसान पहुंचता है तो सम्प्रदाय के नकली सिक्के से पहुंचता है। उसके लिए बहुत सचेत होने की जरूरत है।

वह नहीं बन सकेगा, क्योंकि न तो मेरा कोई शिष्य है, न मैं किसी का गुरु हूं। और जिन लोगों के लिए मैं कह रहा हूं, मैं गवाह हूं, उनको भी ऐसा सिर्फ इसीलिए कह रहा हूं कि अभी तुम सीधे नहीं जुड़ पाते, सीधे परमात्मा से जुड़ जाओ तो तुम मुझे परेशान मत करना। मैं नाहक परेशान होने को तैयार भी नहीं हूं। मेरा लेना-देना नहीं है कुछ। मुझे कुछ सम्बन्ध नहीं है। अगर तुम सीधे ही जुड़ जाओ तो इससे बेहतर कुछ भी नहीं है। तब तो साक्षी का भी कोई सवाल नहीं, गवाह का भी कोई सवाल नहीं।

प्रश्नकर्त्ता : नाम बदलने का क्या अर्थ है ? गले में माला पहनने का क्या अर्थ है ?

नये नाम से पुराने तादात्म्य का टूटना

भगवान श्री : हां, अर्थ है, अर्थ बहुत है। संन्यासी का नाम बदलने का बड़ा अर्थ है। वह सूचक है। और हमारी जिन्दगी में सभी कुछ सूचक है। एक नाम से आप जीते रहे हैं, एक नाम से आपकी आइडेंटिटी है। एक नाम आपका प्रतीक रहा है। आपके व्यक्तित्व का उससे जोड़ हो गया। आप कल तक जो थे उसके साथ आपके नाम का अन्तर्जोड़ [एसोसियेशन] है। उससे वह जुड़ा है। संन्यासी का नाम बदलने का अर्थ यह है कि हम उसकी

पुरानी आइडेंटिटी (तादात्म्य) से उसे तोड़ते हैं। हम कहते हैं तुम वह नहीं रहे जो तुम कल तक थे। अब तुम एक नयी यात्रा पर जाते हो, नई आइडेंटिटी लेकर जाते हो।

पुराने दिनों में जब दीक्षा दी जाती थी तो एक छोटा-सा प्रयोग करते थे। वह प्रयोग यह था कि जैसे हम मुर्दे को नहलाते हैं अर्थी पर चढ़ाने के पहले, वैसे उसे नहलाते थे। जैसे हम मुर्दे के बाल घोट देते हैं, सिर घोंट देते हैं, ऐसा उसका सिर घोंट देते थे। फिर जैसा मुर्दे को अर्थी पर चढ़ाते हैं वैसा उसे अर्थी पर चढ़ा देते थे। फिर अर्थी में आग लगा देते थे। और फिर आस-पास खड़े वे सारे लोग, जिनको मैं साक्षी कहूंगा, विटनेस कहूंगा, वे उससे कहते थे कि अब जल जाने दो उसे, जो तुम कल तक थे। और तब वे उसे चिता से बाहर खींचकर कहते थे कि यह तुम्हारा पुनर्जन्म है। अब तुम द्विज (रि-बॉर्न) हुए, दूसरा जन्म हुआ।

यह सिर्फ सिम्बालिक रिचुअल था। अपने आप में वह दिखता है कि इसे न करें तो कोई हर्ज नहीं। नहीं है कोई हर्ज। **अगर समझ बहुत हो तब तो इस दुनिया में किसी भी रिचुअल का, किसी भी बात का कोई अर्थ नहीं है।** लेकिन उतनी समझ कहां है? वह आइडेंटिटी तोड़ने में सहयोगी हो जाता है। अचानक पता चलता है कि अब तुम वह नहीं रहे।

बार-बार जब भी खयाल आयेगा कि अब मेरा वह नाम नहीं है जो कल तक था, मेरा दूसरा नाम है—जब रास्ते पर कोई बुलायेगा तो उस नाम से नहीं, जो कल तक आपका था। नये नाम से बुलायेगा—तो आप भी उतने ही चौंकेंगे। अपने भीतर से आइडेंटिटी (तादाम्य) रोज-रोज टूटेगी और पता चलेगा कि वह आदमी समाप्त हो गया जो कल तक था और एक नई यात्रा शुरू हो गई। इसके स्मरण के लिए नाम के बदलने का उपयोग है।

माला में छिपा रहस्य : १०८ ध्यान-विधियों से एक ही लक्ष्य की प्राप्ति

दूसरी बात पूछी है कि **माला का क्या अर्थ हो सकता है? व्यर्थ तो** कुछ भी नहीं होता कभी। लंबे चल-चल कर व्यर्थ हो जाता है, यह दूसरी बात है। सभी चीजें चलते-चलते घिस जाती हैं और गंदी हो जाती हैं। माला में एक सौ आठ गुरिए देखे होंगे। लेकिन खयाल में नहीं आया होगा कि वह क्या हैं? **१०८ ध्यान की पद्धतियां हैं, एक सौ आठ मार्ग हैं ध्यान के, एक सौ** आठ विधियों से ध्यान की संभावना है। और आप और मेरा सम्बन्ध बना

रहा तो धीरे-धीरे एक सौ आठ विधियां सभी आपके खयाल में ला देने की हैं। वह एक सौ आठ गुरिए एक सौ आठ ध्यान के प्रतीक हैं।

जब कोई साक्षी किसी को वह माला देता था तो वह याद दिलाता था कि **तुझे मैंने सिर्फ एक रास्ता ही समझाया और बताया है, और भी रास्ते हैं एक सौ सात। इसलिए किसी दूसरे को गलत कहने में बहुत जल्दी मत करना।** और सदा याद रखना कि अनन्त रास्ते हैं उसके।

और एक सौ आठ गुरियों के नीचे लटका हुआ एक बड़ा मनका देखा होगा। वह इस बात की खबर है कि एक सौ आठ में से किसी से भी पहुंचो, एक पर अन्त में आदमी पहुंच जाता है। **कहीं से भी चलो, एक पर पहुंचना हो जाता है। एक सौ आठ गुरिये और एक मनका ये सब सिम्बालिक हैं, पोएटिक हैं, काव्यात्मक हैं, लेकिन अर्थपूर्ण हैं।**

एक आदमी शादी करके लाता है घर किसी स्त्री को। फिर हम उसका घर में नाम बदलते हैं। कभी पूछा नहीं कि क्यों बदलते हैं? आइडेंटिटी तोड़ते हैं। वह किसी और घर की लड़की है। वह कहीं और बड़ी हुई है, किसी और परिवार में बड़ी हुई है, किन्हीं और संस्कारों में पली है। उसके नाम के साथ उसका सारा पुराना व्यक्तित्व जुड़ा है। घर में लाकर हम उसका नाम बदल देते हैं, उसकी नई यात्रा शुरू हो जाती है। हम उससे कहते हैं, भूल जा उस घर को जहां तू थी, भूल जा उस सम्बन्ध को जहां तू थी, भूल जा उन संस्कारों को जहां तू थी। अब एक नया परिवार, अब एक नया घर, नई दुनिया शुरू होती है। तेरे नये नाम के आस-पास अब एक नया क्रिस्टलाइजेशन (समग्रीकरण) होगा।

संन्यास के उपकरणों की खो गई सार्थकता की पुनर्स्थापना

माला, नाम और बहुत कुछ है, उन सबके अर्थ तो बहुत हैं। लेकिन वे सब बातें धीरे-धीरे चल-चलकर व्यर्थ हो गई हैं। और जब वे व्यर्थ हो गई हैं तो मैं हजार बार उनके खिलाफ बोलता रहता हूं। मैं उनकी व्यर्थता के खिलाफ बोलता रहता हूं। लेकिन मेरी पीड़ा समझना आपको बहुत मुश्किल पड़ती है। मेरी पीड़ा यह है कि मैं जानता हूं कि कोई चीज सार्थक है और व्यर्थ हो गई है। मैं उसके खिलाफ भी बोलता रहूंगा और उसके पक्ष में भी कुछ करता रहूंगा। अब यह मेरी मुश्किल है।

मैं कुछ चीजों के खिलाफ बोलता रहूंगा, क्योंकि वे व्यर्थ हो गई हैं और फिर भी किसी मार्ग से उन चीजों के पक्ष में कुछ करता रहूंगा, क्योंकि मैं जानता हूं, मूलतः उनकी सार्थकता थी। और वह मूलतः सार्थकता नहीं खो जानी चाहिए। यह दोनों एक साथ चलेगा। इसलिए मैं कई तरह के मित्रों

को दुश्मन बना लूंगा और कई तरह के साथियों को खोऊंगा और रोज यह चलेगा। और वह चलता रहेगा, उसमें कोई उपाय नहीं है। क्योंकि, मैं एक दिन माला के खिलाफ बोलूंगा, जब कोई मेरे पास आ जायगा और माला की बात करने लगेगा तो मैं खिलाफ बोलूंगा। लेकिन, मैं हैरान हुआ हूं जानकर कि मैं बड़े से बड़े संन्यासियों के सामने माला के खिलाफ बोला, और वह माला के पक्ष में एक शब्द भी न कह सके। मैं तो सोचता था कि कोई मुझसे माला के पक्ष में कुछ कहेगा। अब कोई नहीं मिला तो मुझे खुद ही कहना पड़ेगा और कोई उपाय नहीं रहा।

●●

SOLEMN SURRENDER

I seek refuge in You,
Do favour, oh Gracious Lord !
I have neither vigour, nor wisdom,
nor performance or capacity;
I stand as a beggar at your door,
Do Favour oh Gracious Lord !
I seek refuge in You.

Anand Bharti,
Kanpur.

तुलसी मानस प्रकाशन की उपलब्धियां

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. **संसार का सार (हिन्दी में)**– आधुनिक खेलों, वैज्ञानिकों साधनों, 'जीव-जंतुओं, वनस्पतियों के द्वारा आध्यात्म शिक्षा। ३–००

२. **ज्ञान साधना**–लोनावाला शिविर में पधारे हुए महापुरुषों के ज्ञान साधना के प्रति संकेत। २–००

३. **विज्ञान से ज्ञान**– एक्स-रे इत्यादि आधुनिक उदाहरणों को लेकर आध्यात्मिकविद्या नवयुवकों तक पहुंचाने का सफल प्रयास। १–००

४. **वेदान्त-नवनीत**– सन् १९६४ के अमृतसर के वेदान्त सम्मेलन में पधारे महात्माओं के प्रवचनों का सार। १–५०

५. **वेदान्त का सरल बोध**–वेदान्त के क्लिष्ट ग्रंथों के सिद्धांत बड़े ही सरल उदाहरणों में। २–००

६. **आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी)**– ज्ञान की गंभीर बातों का सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत। ४–००

७. **आध्यात्मिक डायरी**—१९७२– सचित्र और दार्शनिक सूत्रों से परिपूर्ण दैनंदिनी। ७–००

८. **आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंग्लिश) पाकेट बुक**– २५० पृष्ठों में रंगीन ब्लैक एण्ड ह्वाइट चित्र इंग्लिश तथा हिन्दी में सूत्रों सहित सर्वसाधारण के लिए आध्यात्मिक ज्ञान। ६–००

९. **मुमुक्षु**–आधुनिक मनोरंजक आध्यात्मिक उपन्यास। ५–००

१०. **मन की शांति (पद्य)**– अंग्रेजी मूल रचना 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद। ४–००

११. **हमारी परंपरा**– क्रिकेट और ताश के पत्ते आदि दृष्टांतों द्वारा आध्यात्म की नवयुवकों तक पहुंच। २–००

१२. **आराम सुख शांति और आनंद**– जैसा नाम तैसा गुण। ०–५०

१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. **अपनी ओर इशारा**– अपनी ओर आने के सूत्र रूप इशारे । १–००
१५. **व्यवहारिक जीवन और परमात्मा**– व्यवहार परमात्ममिलन में बाधक नहीं, इसकी स्पष्टता । १–००
१६. **श्मशान यात्रा**– जीवन यात्रा का अंतिम चरण । ०–५०
१७. **मेरे १०८ गुरु**– क्षण-क्षण व कण-कण से नूतन ज्ञान । ३–००
१८. **सजगता**–पल-पल अविरल वर्तमान में सजग जीवन । १–००
१९. **अविरोध-निरोध और स्वबोध**–अविरोध से मन का निरोध और निरुद्ध मन में स्वबोध । २–००
२०. **वेदान्त का वैज्ञानिक मनन**–वैज्ञानिक दृष्टान्तों द्वारा वेदान्त का मनन । २–००
२१. **चिंता और निश्चितता**– चिन्ता से पार उतरने के सरल सूत्र । २–००
२२. **मन के पार**– विकट सामाजिक धार्मिक और आध्यात्मिक प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर । १–००
२३. **घर-घर की समस्या**– घरेलू दैनिक विकट समस्याओं का समाधान । २–००
२४. Peace of Mind-अंग्रेजी में सूत्र रूप आध्यात्मिक सरल ज्ञान । ५–००
२५. Quieter Moments - मौन के क्षणों में लिखे सूत्र रूप अंग्रेजी-सूक्त । २–००
२६. **मनन योग्य बातें**– १–००
२७. **जाग्रत-जाग्रत**–जाग्रत जीवन । ०–५०
२८. **जाग रे जाग**–स्वामी निर्मल जी के रहस्यमयी प्रवचनों का संकलन– ४–००
२९. **उनके सान्निध्य में**– स्वामी निर्मल जी के अनुभवपूर्ण रहस्य । २–००
३०. **'मनन' आध्यात्मिक मासिक**–मनन करने योग्य पत्र, वार्षिक शुल्क ४–००

ग्राहक आर्डर देने से पहले अपने शहर के पुस्तक विक्रेताओं से पता कर लें
ग्राहक एवं एजेन्ट्स, पत्र व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

इस आनंद आलोक को दूर-दूर तक प्यासे हृदयों तक पहुंचाने का हमारा आनंद उत्सव निरंतर चलता रहे, इस हेतु वर्ष के आरंभ में हमने स्थायी-निधि पत्र प्रेषित किये थे।

सन् ७१-७२ के वर्ष में हमें अभी तक ४०५) रु. की धनराशि अपने प्रेमी साधकों से प्राप्त हुई है। आपका सहयोग भी हमें शीघ्र मिलेगा, ऐसी कामना है।

इस वर्ष प्राप्त हुई राशि की सूचना इस प्रकार है :

१. श्री शिवशंकर, सचिव : कोल माइन्स वेलफेयर कमिश्नर, जगजीवन नगर (धनबाद) २) रु.

२. श्री दानमल प्रेमचंद जी बाफना, क्लाथ मर्चेंट, प्रेम-विलास, शिरीष मेहता रोड, पो० : नंदुरबार (धूलिया, महा.) १०) रु.

३. श्री एल.संतराम गुलशनलाल आनंद, १५, केला-गोडाउन, सब्जी-मंडी, देहली-७ १०१) रु.

४. श्री अशोक कुमार छाबड़ा, सेंट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, अंबाला शहर १०) रु.

५. श्री नवीन तिवारी, ११४, तिलक नगर, इन्दौर (म. प्र.) १०) रु.

६. श्री साधु ईश्वर समर्पण, जीवन जागृति केन्द्र, बंबई ५०) रु.

७. श्री गटु भाई जे.दबे, संतोक-सदन, २३, करणपारा, राजकोट (गुज.) १०) रु.

८. श्री लक्ष्मीकांत एन.पटैल, ७४, सरदार कुंज सोसाइटी, अहमदाबाद-१ १०) रु.

९. श्री मनु भाई रावजी भाई पटैल, एम. ई. एस. हाई स्कूल के सामने, हकीम स्ट्रीट, नगरवाडा, बड़ौदा (गुज.) १५) रु.

१०. श्री पुरुषोत्तम C/o बाम्बे फेन्सी स्टोर्स, सिंधी बाजार, उदयपुर (राज.) ५०) रु.

११. श्री अशोक कुमार, C/o श्री रामेश्वरलाल जी, रिटायर्ड एस.डी. एम., अनूपगढ़ (जि. श्री गंगानगर) ५) रु.

१२. श्री शामजी भाई, नेशनल पैट्रोलियम डिस्ट्रीब्यूटर्स, मालगोदाम रोड, कैंट, वाराणसी (उ. प्र.) ३०) रु.

१३. श्री दाऊलाल त्रिवेदी, सी. आई. पुलिस, जोधपुर (राज.) ११) रु.

१४. श्रीमती मायादेवी जैन, हा. नं. १५५५, सेक्टर : 18-D, चंडीगढ़ १०) रु.

१५. श्री रतिलाल एच.शाह, १८, कोठारी मेंसन, एल. एन. रोड, माटुंगा, बंबई : १९ ११) रु.

१६. श्री सत्यनारायण सिन्हा, अधिवक्ता, ग्राम : नैनपुरा, पटना-१ २०) रु.

१७. अमरावती की एक बहन, द्वारा : स्वामी अगेह भारती जबलपुर ५०) रु,

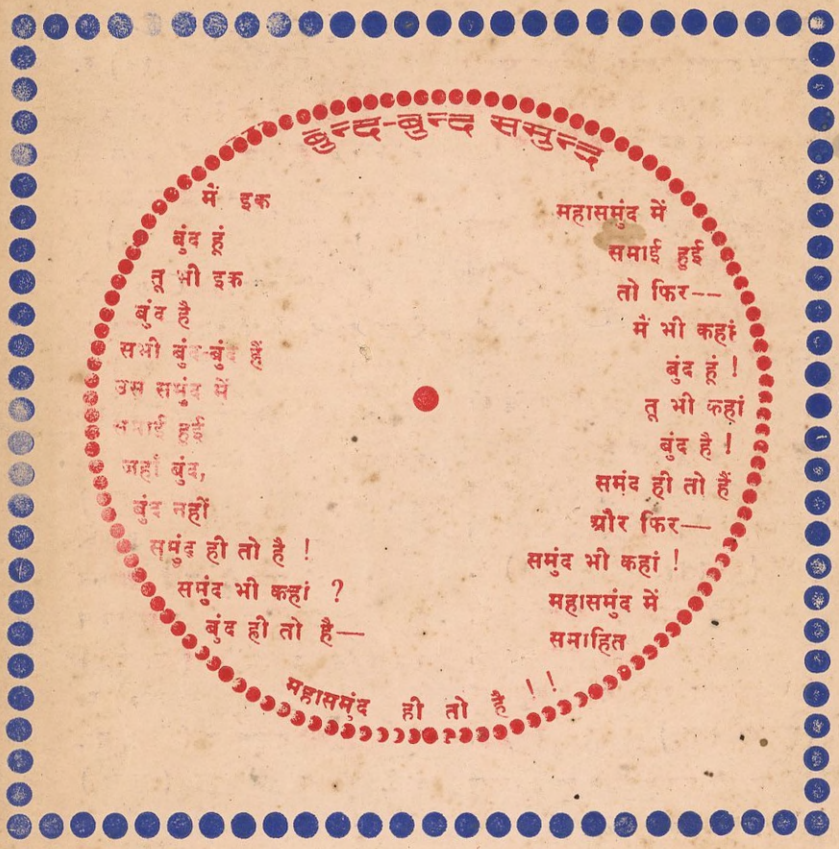

[स्वामी दयाल भारती और श्री 'आकुल' राजेन्द्र के बीच एक काव्यात्मक वार्तालाप]

बुक़ांद

जून १९७२